THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180219
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/S53G Accession No. G.H. 212

Author शर्मा, ब्रजनंदन

Title गल्प-संसार-माला: तेलुगु

This book should be returned on or before the date last marked below.

गल्प-संसार-माला

: संपादक :

श्रीपतराय

भाग—७ : तेलुगू

: लेखक-गण :

पि० वे० राघवशास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण,
मुनिमाणिक्यं नरसिंहाराव, मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री,
गुडिपाटि वेंकटाचलम्, वेंपटि नागभूषणम्
अडिवि बापिराजु, चिन्ता दीक्षितुलु,
बोड्डु बापिराजु, 'करुणकुमार'
मुद्दुकृष्ण,

: इस भाग के संपादक :

ब्रजनन्दन शर्मा

बनारस,
सरस्वती-प्रेस।

प्रथम संस्करण, १९३९ ।

मूल्य ॥)

: मुद्रक :

श्रीपतराय,

सरस्वती-प्रेस,

बनारस ।

[**परिचय :** भारत में ९ प्रमुख जीवित भाषाएँ हैं जिनका अपना कहानी साहित्य है। इनके अतिरिक्त ४ और ज़बानें भी हैं—आसामी, उड़िया, सिंधी, गुरुमुखी। हमारी योजना यह है कि पहली ९ भाषाओं में प्रत्येक से १० या अधिक सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कहानियाँ एक-एक पुस्तक में संगृहीत की जायँ और इन संग्रहों की यह माला 'गल्प-संसार-माला' के नाम से प्रसिद्ध हो। पहले इन ९ भाषाओं का संग्रह तैयार होगा। १०वें भाग में अंतिम चार ज़बानों की मिली हुई कहानियाँ पूरी की जायँगी। आरम्भ में भारत से, इस प्रकार १० भाग हुए। इसके उपरान्त संसार की और भी भाषाओं से कहानियाँ इन पुस्तिकाओं में संगृहीत की जायँगी, जैसे अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, आदि ; और यह माला ३-४ वर्षों में संपूर्ण होगी। किन्तु प्रत्येक भाग अपने आप में पूर्ण होगा और इसलिए यह लम्बी अवधि भयंकर न होनी चाहिये। प्रत्येक भाग में २००-२५० पृष्ठों तक रहेंगे, काग़ज़ सुन्दर, सफेद ग्लेज़ रहेगा ; मूल्य बेहद सस्ता, यानी आठ आने प्रति भाग और स्थायी ग्राहकों को **छः आने** में मिलेगा।

इस माला की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रामाणिकता है जिसके लिए प्रकाशकों ने सभी साहित्यकारों तथा संस्थाओं से मदद ली है और अथक परिश्रम किया है ; जिसके लिए प्रकाशकों का नाम ही पर्य्याप्त है। इस माला का स्थायी ग्राहक बनना आपका कर्तव्य होना चाहिये क्योंकि इतनी सुरुचिपूर्ण और प्रामाणिक किताबें इस सस्ते मूल्य हिन्दी में प्राप्य नहीं हैं, तथा इस योजना की सफलता इसी में है कि इसके कम से कम दो हज़ार स्थायी ग्राहक हमें मिल जायँ।]

जिनकी कहानियाँ यहाँ संग्रहीत हैं उन्हीं
अमर कथाकारों
को

सूची

तेलुगू का गल्प-साहित्य	मुद्दूकृष्ण	: १ :-: ५ :
चिन्ता दिक्षितुलु	गोदावरी भी हँस पड़ी	१७
गुड़िपाटि वेंकटाचलम्	शहर का जादू [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	३१
पि० के० राघव शास्त्री	मंगल-सूत्र [अनु०, आंजनेय शर्मा]	५९
बोड्डु वापिराजू	पुण्यात्मा [अनु०, आंजनेय शर्मा]	७५
अड्डिवि वापिराजु	बोधिर की तराई [अनु०, मलयंचिली वेंकटेश्वर]	८७
मुनिमाणिक्यं नरसिंहाराव	समुद्र-स्नान [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	११३
मुद्दूकृष्ण	मानव और पशु [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	१२७
मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री	मरीचिका [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	१३७
'करुणकुमार'	वेंकन्ना [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	१४९
विश्वनाथ सत्यनारायण	माक्ली दुर्ग का कुत्ता [अनु०, मलयंचिली वेंकटेश्वर]	१८१
वेंपटि नागभूषणम्	ज्योत्स्ना रानी [अनु०, ब्रजनन्दन शर्मा]	१९५

भूमिका

आदमी की पैदाइश के साथ ही कहानी की पैदाइश हुई। इसलिए तो बच्चे भी कहानी के नाम से खिल उठते हैं। यद्यपि साहित्य अपनी कला और विदग्धता के सहारे क्रमशः प्रौढ़ता को प्राप्त होता है—उसके सभी अंश पूर्णरूप से विकसित होते हैं, पल्लवित तथा पुष्पित होते हैं; तथापि उसके हृदय में सदा के लिए अक्षुण्ण होकर कोई चीज़ रहती है तो कहानी और कल्पना ही। कहानी ही साहित्य की बुनियाद या रीढ़ है। महाकाव्य, नाटक या उपन्यास कुछ भी हो, बिना कहानी का सहारा लिये उसका काम नहीं चल सकता।

इस रहस्य को हमारे पुराने संस्कृत के कवि अच्छी तरह जानते थे। अतएव उन लोगों ने कहानियों की सफल योजना की है; जिसके फल-स्वरूप संस्कृत-साहित्य में 'कथा-सरित्सागर' की सृष्टि हुई। रामायण और महाभारत या भागवत जनसाधारण में इतना प्रचार न पाते अगर उनके अन्दर सुन्दर मनभावनी कहानियों का भंडार न होता।

मगर इस जमाने की कहानी—छोटी कहानी Short story—

सभी देशों में अपनी-अपनी खासियत लेकर पैदा हुई। रूस के टालस्टाय गोर्की, चेखॉव ; फ्रांस के मोपासा, बलजाक, भारत के रवीन्द्र तथा प्रेमचन्द इस युग के कहानी-सम्राट हैं। ये सभी मानसिक दृष्टिकोण से एक ही भाव-धारा के अन्तर्गत —एक दूसरे से प्रभावित होते आ रहे हैं। हालाँकि इनमें से कुछ १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध और कुछ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए हैं। अतः इन सबों को 'समानोदक' (बराबर) मानना ही पड़ेगा।

साहित्य की इस रुझान को पहचानकर हम छोटी कहानियों (Short stories) को तेलुगू-साहित्य में महत्त्व दिलाने की कोशिश करनेवाले कुछ लेखक हैं जो उपर्युक्त वर्ग में आते हैं। मगर इतने से यह समझ लेना भूल है कि इसके पहले कहानियाँ न थीं ! 'कामम्मा कथा' 'भोजराज कथा' वगैरह कहानियाँ उसके पहले—बहुत पहले—मौजूद थीं। फिर 'काशी भजिली' बहुत चाव से पढ़ी जाने लगी। अलावा इसके गीतों के रूप में गाई जानेवाली—'बाल नागम्मा कथा', 'बोब्बिलि कथा' आदि कथाएँ भी बहुत लोकप्रिय हुईं।

फिर भी आधुनिक कहानियाँ अँग्रेज़ी भाषा के संसर्ग से एक दूसरा ही रूप लेकर चली हैं। रूस और फ्रांस के कहानीकारों तथा रवीन्द्रनाथ ने आन्ध्र साहित्यकारों को बहुत ज्यादा आकृष्ट किया। उनकी कला की श्रेष्ठता तथा जानकारी को आन्ध्र कथाकार अपना रहे हैं ; उस श्रेष्ठता को चमकाने के लिए नई-नई रोशनियाँ भी उस पर डाल रहे हैं।

इन कहानीकारों में पहला गौरवनीय स्थान चिंता दीक्षितुलु को देना पड़ेगा। आप तेलुगू के कहानी सम्राट हैं। जड़ जमाये हुए सामाजिक अत्याचार, वैयक्तिक स्वतंत्रता का नाश कर देनेवाली हमारी विवाह-प्रथा आदि रूढ़ियों को देख आकुल आक्रोश से भर अपना हृदय चीरकर हाथ में ले पाठकों के कलेजे को पार कर जानेवाली जितनी तीक्ष्णता और वेग वेंकटाचलम् की लेखनी में है, उतनी ही शान्ति, सौम्यता और आध्यात्मिकता दीक्षितुलुजी में है। दीक्षितुलु मानव-जीवन की गहराई में उतरते हैं। अपनी कहानी के छोटे से छोटे कलेवर के अन्दर बहुत बड़े निगूढ़ सत्य को आसानी से गुंफित कर देते हैं। व्यग और हास्य भरी रचनाओं के लिए नोरी नरसिंह शास्त्री और नरसिंहाराव अपना सानी नहीं रखते। नरसिंह शास्त्रीजी का 'बैरिस्टर पार्वतीशं' पढ़कर आन्ध्र देश में कौन ऐसा होगा जो हँसते-हँसते लोट-पोट न हो गया हो। अपनी साहित्यिक यात्रा के लिए कांतम नामक काल्प-निक पत्नी का सृजन कर उसके द्वारा नरसिंहारावजी दाम्पत्य-जीवन की छोटी-मोटी घटनाओं का परिहास-मय ऐसा सुन्दर रूप खड़ा कर देते हैं कि देखते ही बनता है। विश्वनाथ सत्यनारायण महाकवि हैं। काव्य, खंडकाव्य, नाटक और उपन्यास सब कुछ लिखने में आप सिद्ध-हस्त हैं। आपकी छोटी कहानियाँ भी सुन्दर होती हैं। बापिराजु कलोपासक हैं। इनकी रचनाओं में एक विचित्र अभिव्यक्ति रहती है। इनके उपन्यास और गीतों में जो सौकुमार्य रहता है, वह कहानियों में

भी परिलक्षित होता है। शिवशंकर शास्त्रीजी विद्वान और कवि पहले हैं। आज के आन्ध्र-नव-साहित्य के आप प्रवर्तक हैं। आपकी उन दिनों रची 'मुरारी की कहानियाँ'—जो छोटी कहानियों का प्रारम्भिक काल था—एक रमणीय भाव कल्पना है। 'करुणकुमार' देहाती-जीवन के लेखक हैं। आपकी कहानियों में 'देहाती-जीवन' की बड़ी अच्छी झलक प्रतिबिंबित होती रहती है।

वैसे तो अन्य भाषा के मुकाबले में तेलुगू में स्त्री लेखिकाएँ कम हैं। फिर भी वरलक्ष्मम्मा जैसी प्रतिभावान लेखिकाएँ भी हैं। समाज-सेवा में जीवन व्यतीत करनेवाले लोगों में जो वेदना और दुःख होता है, वह आपकी रचनाओं में अंकित दीखता है। श्री कुटुम्बराव समाज-सुधारक हैं। उसके वास्ते आपने अपनी कहानियों को खास अस्त्र बना लिया है।

यहाँ पर वीरेशलिंगम पंतुलु और लक्ष्मी नरसिंहम पंतुलु का उल्लेख करना आवश्यक है जो समाज-सुधार में अग्रगण्य और प्रथम श्रेणी में स्थान पाने लायक हैं। मगर उन लोगों का उद्देश्य कहानियों के जरिये समाज-सुधार था, इसके अलावा भाषा भी 'ग्रांथिक' (जटिल पुराना गद्य) थी, इसलिए उनकी रचनाएँ दौड़ में पिछड़ गईं और जन-रुचि को पकड़ न सकीं। व्याकरण तथा जटिलता-सम्बन्धी रूढ़ियों को तोड़ने और बोल-चाल की सजीव भाषा में साहित्य को प्रतिष्ठित करने का श्रेय श्री अप्पाराय कवि को देना चाहिये।

आपकी छोटी कहानियों के मार्ग-दर्शक भी आप ही थे। आप आन्ध्र भाषा में आधुनिक युग के प्रथम वैतालिक थे। आपकी रचनाओं, इन छोटी कहानियों, को आदरणीय स्थान मिलता है।

छोटी कहानियाँ रोज-बरोज अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही हैं। इसका कारण नित्य की बोल-चाल की सजीव भाषा में लिखा जाना तथा जनसाधारण के नित्य के अनुभव और भावनाओं का उनमें स्थान पाना है। अप्पाराय कवि से लेकर आजतक कहानी लेखकों के बड़े समुदाय को अपनी ओर खींचती साहित्य का मुख्य अंग बन रही है।

मद्रास,
३०-६-३९

मुद्दूकृष्ण

गोदावरी भी हँस पड़ी

चिन्ता दीक्षितुलु

[श्रीचिता दीक्षितुलु तेलगू के प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं यह प्रतिभा बहुमुखी है। आप नाटक, कहानी, कविता-यानी साहित्य के सब अङ्गों के प्रतिभावान लेखक हैं। तेलुगू साहित्य में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। तेलुगू के नवीन युग के उन्नायकों में आपका स्थान सुरक्षित है।

आपका 'शवरी' नाटक कल्पना और भावुकता का सुन्दर उदाहरण है। 'एकादशी' आपकी ग्यारह कहानियों का संग्रह है। 'लक्क पिड़तलु' नामक पुस्तक में आपकी बालोपयोगी कविताओं का संग्रह है।

दीक्षितुलुजी की कहानियाँ तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम प्रकार की आपकी कहानियों में प्रेम का बहुत सुन्दर चित्रण होता है। आपका प्रेम भी बहुत उच्चकोटि का होता है। सस्ता प्रेम नहीं। आपकी दृष्टि पैनी है। आपका मनोविज्ञान में जितना प्रवेश है, प्रकृति के हृदय में भी आपका उतना ही प्रवेश है। 'शवरी' और 'चेंचु रानी' इसके उदाहरण हैं। आपकी दूसरी तरह की कहानियाँ बालकों के योग्य होती हैं। यदि यह कहा जाय कि तेलुगू साहित्य में बाल-साहित्य है ही नहीं—तो अत्युक्ति न होगी। और जो कुछ थोड़ा-बहुत बाल-साहित्य है—उसकी आत्मा दीक्षितुलुजी की रचनायें ही हैं। बालकों के चरित्र का बड़ा मनोहर अंकन आप करते हैं। आपकी तीसरी प्रकार की कहानियाँ दार्शनिक विवेचन पर हैं। अतः श्रीदीक्षितुलु की प्रतिभा के विषय में थोड़े में कहना कठिन है।

आपने करीब सौ कहानियाँ लिखी हैं। आप लगभग २० साल से लिख रहे हैं। आजकल शिक्षा-विभाग में कार्य कर रहे हैं।

जन्मभूमि आपकी गोदावरी प्रान्त में है; जहाँ आज से ४१ वर्ष पहिले १८९८ में आपका जन्म हुआ था। सादी प्रकृति के, परिष्कृत रुचि के आप मनुष्य भी कलाकार से कम ऊँचे नहीं हैं;]

गोदावरी भी हँस पड़ी

शाम का वक्त। सूरज सुहागिन की तरह मुँह पर हलदी-कुंकुम लगाये गोदावरी नदी के पवित्र जल में नहाने जा रहा था। चिड़ियाँ अपने घोसलों को लौट पड़ीं, चौपायों ने अपने घर की राह ली। मज़दूर दिन की कड़ी मेहनत खतम कर शहर के गुल-गपाड़े से बचकर अपने-अपने गाँव की चुप्पी में आराम करने जा रहे थे। शहर के नागरिक

क्लब के हाते में मक्खियों की तरह जुटने लगे, और उन्हीं में से एक—मैं गोदावरी के तट की सैर को निकला।

बहुत दूर तक तो शहर की ही हवा चलती रही। एक जगह एक सज्जन किसी भद्र महिला को सलाह दे रहे थे कि कॉफ़ी (Coffee) की जगह 'बंगाल केमिकल वर्क्स' का 'पानीयन' काम में लाना बहुत अच्छा है। दूसरी जगह दो सराफों में हिन्दुस्तान से हर हफ्ते विलायत की तरफ़ बेहद बहनेवाले 'सुवर्ण-प्रवाह' के बारे में बातें हो रही थीं, और एक स्थान पर किसी स्कूल का विद्यार्थी अपने जापानी रेशम के पायजामे और 'पोलो-कॉलर' शर्ट पर फूला न समाया हुआ दूसरे लड़कों के पहनावे पर फ़बतियाँ कस रहा था।

चलते-चलते कुछ दूरी पर, शहरी हवा का चलना बन्द हो गया, एक नई गंध उठने लगी, वह थी गाँव की गंध। गोदावरी की सतह से निकलकर, किनारे के पेड़ों से छनती हुई, ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़ों के गोल-गोल हरे-हरे पत्ते सायंकाल की सुनहरी धूप में खेल रहे थे, शहर की मोटरों की धूल से उन पर विवर्णता नहीं चढ़ने पाई थी। किनारे के दोनो तरफ़ आज़ादी में बढ़ी हुई झाड़ियों में तीन बालाएँ घूम रही थीं। सिन उनका ऐसा कि लज्जा उनके दिलो में दाखिल हुआ ही चाहती थी। उनके पैरों में चप्पल थे, शहर की औरतों की-सी रेशमी स्लीपर नहीं; पैरों की हिफ़ाज़त करनेवाले चप्पल थे। उनसे उन पैरों की शोभा नहीं बढ़ सकी; बल्कि उनके पैर ही उन चप्पलों को खूबसूरती अता कर रहे थे। उनके कपड़े गरीबों के-से थे, फटे व पुराने; मगर जापानी नहीं थे। मेरी आँखें नागरिक महिलाओं के

भड़कीले कपड़े देखने की आदी हो गई हैं ; मगर उन बालिकाओं के गाढ़े के पहनावे में उन्हें सच्ची सुन्दरता देख पड़ी। मँगनी की चीज़ों में और अपनी निज की चीज़ों में यही फर्क होता है। शहर की महिलाओं की तरह उनके मुख की सहज सुन्दरता ने किसी बढ़िया, फैंसी डिबिया में बन्द रहनेवाले 'पाउडर' की पनाह नहीं ली, उनके बनाव-सिंगार में जापान व इंगलैंड के नमूने नज़र नहीं आये। किनारे पर उगे हुए पलास के फूलों की भाँति उनका अरुण लावण्य सहज और जन्म-सिद्ध था। उन झाड़ियों में वे क्या कर रही थीं ? पेड़ों की शाखों पर चहकनेवाली चिड़ियों की देखा-देखी वे भी तान अलाप रही थीं। गोदावरी की छोटी-छोटी लहरों ने भी उनके सुर में सुर मिलाकर ताल दिया ; मगर नागरिकों के तो इसे सुनने के कान ही नहीं होते।

सूरज का आधा हिस्सा नदी के नीचे डूबा हुआ था। सूखी फुनगियाँ, टहनियाँ और जड़ें वगैरह जो ईंधन के काम आयें, टोकरियों में भर-भरकर वे तीनों लड़कियाँ घर का रुख किये जाने लगीं। जब मुझसे आँखें चार हुईं, तो रास्ता बचाकर, सहमी हुई नज़रों से देखती आगे निकल गईं, जैसे काई मरकहे बैल से बचकर निकल भागे ; अगर शहरी सभ्यता में मेरा दिमाग़ पका होता, तो उन्हें अंग्रेजी में जानवर कहकर गाली दे बैठता ; मगर मैंने ख़ूब सोचकर अपने को ही वैसा मान लिया ; क्योंकि वे थीं असली पौधों के लिखनेवाले फूल और मैं था नकली काग़ज़ी फूल।

मैं भी उनके पीछे-पीछे थोड़ी दूर पर चलने लगा। संक्रान्ति का

त्योहार करीब था ; इसलिए वे लोग गोब्बि* के गीत गा-गाकर दुहरा रही थीं। उन्हें सुनने की लालसा से मैं उनके और भी नजदीक से होकर चलने लगा ; परंतु उन्होंने गाना बन्द कर दिया, मेरी तरफ़ घूमकर अपनी आँखें चमका दीं और आगे बढ़ीं। मैं ज़रा ठिठक गया और अपनी चाल धीमी करके पीछे हो लिया।

ग्वालों के लड़के अपनी गाय-भैंसों के साथ गाँव को वापस जा रहे थे। मैंने उनसे पूछा—क्या ये भैंसें तुम्हारी ही हैं ? मेरे इस अर्जीब सवाल ने उन्हें ताज्जुब में डाल दिया। सिर हिलाकर बोले—हाँ, हमारी ही तो हैं। औरतें और मर्द, शहर का सौदा ख़तम कर टोलियों में बँटे अपने अपने गाँव वापस जा रहे थे। कइयों के कधों पर खाली काँवरें थीं, जिनमें भर-भरकर वे गाँव की कच्ची और ताज़ी सम्पत्ति शहर में बेचने रोज ले जाया करते हैं। चन्द लोगों के हाथों में शहरी चीज़ों की पोटलियाँ थीं, विलायती अख़बारों के कागज़ों में बँधी हुई। हरएक अपने-अपने मतलब से जा रहा था ; बे-मतलब, बेकार प्राणी उस वक्त उस नदी तट पर अकेला मैं ही था, पढ़ा-लिखा सभ्य, शिक्षित, भद्र पुरुष और नागरिक कहलानेवाला।

वे तीनों कमसिनें गप-शप करतीं, और उनका पीछा किये मैं, चुप-चाप गाँव की तरफ बढ़े चले जा रहे थे। मेरी नजर कभी उनकी सुडौल गरदन पर जा पड़ती, जो उनके सिर पर की टोकरी के बोझ से

* मकर-संक्रान्ति का त्योहार आन्ध्र-देश में धूम-धाम से मनाया जाता है। घर के आँगन में या द्वार पर गोबर के गोवर्द्धन रखे जाते हैं, और वे गेंदे और कुम्हड़े के फूलों से सजाये जाते हैं। तेलगू-भाषा में 'गोब्बि' उन्हीं गोवर्द्धन को कहते हैं।

बीसों बत्त खा रही थी और कभी अस्त होते जा रहे सूर्य के सिन्दूरी रंग में रँगे हुए आसमान की तरफ घूम जाती। थोड़ी ही देर में हम उनके गाँव में पहुँचे। फूस के कच्चे मकान, उन पर भूरे कुम्हड़े और कद्दू की बेलें और लिपी-पुती दीवारें। खिरक नजर आते ही, गायें रँभाती हुई अपने बछड़ों के पास दौड़ी गईं, उनके पीछे ही जाकर ग्वाले उन्हें खूँटों से बाँधने लगे। वे लड़कियाँ भी अपने-अपने घर में दाखिल हुईं, उनके बाप और भाई भी मेहनत मजूरी के पैसे लिये, हारे थके, तभी घर आ रहे थे। लड़कियों के लाये ईंधन से उनकी माताओं ने हमाम गरम किया और उसी से सारे घर का खाना भी पकाया। उसी दिन का कमाया नाज और उसी दिन का बटोरा ईंधन। बस कल फिर रोज की तरह लड़कियाँ ईंधन लाने और बाप व घर के बड़ी उम्र के लड़के मजूरी की खोज में निकलेंगे। उनमें और पक्षियों में मुझे कोई फर्क नज़र नहीं आया। दोनों को उस ईश्वर पर, उनको जन्म देनेवाले पर, पूरा भरोसा रहता है। जाकर किसी चिड़िया से सवाल करो, वह रोज-ब-रोज खाने की तलाश में इतनी परेशानी क्यों उठाती है, एक ही दिन इतना दाना क्यों नहीं जमा करके रख लेती है कि कुछ दिन आराम से बैठकर खा सके? वह तो यही जवाब देगी कि जिस ताकत ने इस सारी दुनिया को पैदा किया है, उसी ने तमाम जानदारों के लिए काफ़ी अन्न इसी में बटोरकर रख दिया है, मैं कहाँ से इकट्ठा करूँ? लेकिन मुझ पढ़े-लिखे नागरिक को इस बात में सचाई नहीं मालूम होती।

सूर्य के अस्त होते ही अँधेरी अपना जाल पसारने लगी। ग्राम-

वासी दाना-पानी करके आराम की नींद सोने जा रहे थे। गोदावरी के किनारे-किनारे मैं शहर की ओर चल पड़ा। रास्ते के पेड़ सो रहे थे, उन पर के घोंसलों में चिड़ियाँ भी सो रही थीं। पानी की थपेड़ों की मीठी आवाज़ सुनता हुआ मैं शहर की सरहद पर पहुँचा, देखा कि लोगों ने अभी तक घरों को याद ही नहीं ली।

(२)

मुझे शहर की ज़िन्दगी पर घिन हो आई। उसी गाँव में जाकर बस जाना अच्छा मालूम हुआ। प्रतिदिन सवेरे उन्हीं ग्वालों के साथ गायों को चराने ले जाना, जंगल के किसी पेड़ की ठण्डी छाँह में बैठकर प्रकृति से अठखेलियाँ करना, कितना आनन्द का जीवन है। उसी गोदावरी का पानी पीकर, उसी कुदरत की नरम गोद में सो जाऊँ; या उन्हीं लड़कियों के साथ मैं भी एक टोकरी लिये देहाती चप्पल पहने, झाड़ियों के बीच में ईंधन चुनते घूमता फिरूँ। उनके सुर में सुर मिलाकर मैं भी खुशी का गीत गाऊँ, हमारे गायन के साथ ही जंगल के पक्षी भी मीठी तान उड़ायें और गोदावरी अपनी लहरों के कलरव से हमें मुबारकबाद दे, लेकिन तकलीफ यह मालूम हुई कि मैं एक शहर का बना-ठना सभ्य सुशिक्षित हूँ, नई रोशनी में पला हूँ। मुझे वे लड़कियाँ क्योंकर अपने पास फटकने देंगी। कहते हैं, आदमी को छूत लग जाने से पक्षी भी अपने झुण्ड से खारिज कर दिया जाता है। मुझे वे अपने साथ कैसे चलने देंगी?

मन में तो यही हुआ कि उस गाँव में जाकर बस जाऊँ और बेफिक्री की ज़िन्दगी बिताऊँ; मगर ग़ौर किया तो मालूम होने लगा

कि मैं इस लायक भी नहीं हूँ। मेरे हाथों को मेहनत-मजूरी का तजरबा नहीं था, मेरे पाँव काँटों, बीहड़ रास्तों और खेतों की मेंड़ों पर चल-चलकर घिसे ही नहीं मेरे शरीर ने सर्दी व गर्मी को एक-सा झेलना सीखा ही नहीं मैं ऐसा बे-लिखा-पढ़ा न था कि जो कुछ पाऊँ, उसी में खुशी मनाता रहूँ। मैंने तो ऐसा इल्म सीख लिया है कि सारी दुनिया को ही समेटकर अपने घर में रख लेने की हवस रखता हूँ। मेरा चित्त हमेशा सख़्तियों से बचने की तदबीर सोचा करता है, पैरों वह ख़ासियत है कि ज़मीन को छूते ही बीमारी के कीटाणुओं को ज़बरन् खींच लें। मेरे हाथ बड़े-बड़े पोथों का बस्ता उठाने के आदी हो गये हैं, पत्थरों को नहीं।

फिर भी मन को तसल्ली देकर मज़बूत बना लिया। उन देहातियों के माफ़िक 'लिख-लोढ़ा पढ़ पत्थर' तो नहीं हूँ, अपनी पढ़ी सारी विद्याएँ उन निरक्षर-भट्टाचार्यों को सिखा दूँगा। इस तरह गुज़र का रास्ता निकल ही आयगा। कुछ दिन उनके गाँव में रहकर उनके सुख-दुःख में हिस्सा लूँ। अपनी सेवा से मदद पहुँचाऊँ, तो गाँववाले निहाल हो जायँगे। आजन्म मेरे कर्ज़दार रहेंगे; उनकी कृतज्ञता से मैं ख़ूब फायदा उठा सकूँगा। फिर सोचने लगा—यह कैसा ख़याल है? उनको पढ़ा-लिखाकर अपना पेट पालने में उपकार ही क्या रहा? गाँववाले मेरा एहसान अपने ऊपर क्यों लेने लगे? वाह रे, मेरे पढ़े-लिखे दिमाग़! मजूरी करनेवाले क्या यह उम्मीद रखते हैं कि उनके मालिक उनका एहसान मानें? ईंधन बटोरनेवाली वे लड़कियाँ अपनी माताओं से कृतज्ञता की आशा रखती हैं; चरवाहे अपनी गाय, भैंसों में, सूर्य और चन्द्रमा इस मानव-

समूह में कृतज्ञता की कल्पना तक नहीं करते। फिर विद्या सिखा देने की इच्छा करते हुए मैं ही क्यों चाहूँ कि गाँववाले मेरे एहसानमन्द रहें?

कुछ दिन वहाँ रहने के बाद छोटा-सा घर भी बनवा लूँगा, फिर उन्हीं ईंधन बटोरनेवालियों में से किसी एक को ब्याह कर उसी गाँव का एक गृहस्थ बन जाऊँगा।

(३)

मैंने हर रोज़, हवाखोरी के बहाने, गोदावरी के किनारे-किनारे उस गाँव में जाने का सिलसिला जारी रखा। गाँववालों से आहिस्ते-आहिस्ते जान-पहचान बढ़ाना, फिर उनकी सम्मति से उनकी बस्ती में जा बसना, यही मेरा इरादा था। उनके बालकों के वास्ते एक मदरसा खोलकर तेलगू अंग्रेज़ी, गणित, भूगोल वग़ैरह की तालीम देने का मैंने निश्चय कर लिया। हौसला यहाँ तक बढ़ गया कि उन तीन कमसिनों में से किसी एक का प्यारा बन जाऊँ और फिर उसके प्रेम-दुर्ग पर हमला करके उसे कब्ज़े में कर लूँ।

एक दिन शाम के वक्त नदी के ऊँचे किनारे पर खड़ा था, पेड़ों के पत्ते तो रोज़ ही मुझे देखा करते थे; इसलिए मैं उनके लिए अजनबी न था। उन्हीं झाड़ियों की तरफ मेरी आँखें दौड़ गईं, और किसी को ढूँढ़ने लगीं। इस व्यक्ति से वहाँ के पक्षी तक वाकिफ़ थे; अतः मेरी इस हरकत व हवस को देख वे भी खिल-खिलाकर हँस पड़े। सामने नदी, दुनिया की कुदरत की तरह, अनजाने, अनदेखे, रहस्य की धुँधली रोशनी में लिपटी बही जा रही थी। उसके ऊपर राग-रंजित आसमान का तम्बू तना हुआ था। उसी तरफ से एक सुरीली तान उड़कर मेरे

कानों में मिठास भरने लगी। उधर घूमकर देखा, तो दूर पर एक साँवली सूरत चमक उठी, वही ईंधन बटोरनेवाली हँस-मुख कमसिन उमंग में उमड़कर गा रही थी। वहाँ से कुछ फासले पर एक धान का खलिहान था और उसमें एक नौजवान लड़का काम कर रहा था। लड़की का गाना कान में पड़ते ही उसने गरदन उठाई, उसकी तरफ मुखातिब हो, जवाब में एक अपनी चीज़ गाकर सुनाई। उन दोनों के बीच का आकाश उस गीत की चाल का रास्ता बना। उसी रास्ते से चलकर दोनों के हृदय एक दूसरे के निकट पहुँचे; दोनों ने उन्हें पकड़कर छिपा लिया। गोदावरी यह सब तमाशा देखकर हँसी; मगर मेरा दिल बैठ गया।

उस लड़के ने खेत की बारी से निकलकर लड़की की तरफ कदम बढ़ाया और वह भी ईंधन की टोकरी सिर पर सँभाले उससे मिलने चली, जब आमना-सामना हुआ, तो दोनों हाथ में हाथ लिये नदी की मेंड़ पर चढ़ आये। उस बाला के बदन पर पुराने कपड़ों की बहार थी। उन पुराने कपड़ों में से उसका यौवन झलक-झलककर फटा पड़ता था। उस नौजवान के हाथ में एक लाठी, सिर पर पगड़ी, घुटनों तक गाढ़े की धोती, शरीर में श्यामल चिकनाहट और आँखों में अन्तर की जगमगाहट थी।

उन दोनों ने मुझे सामने खड़े देखा, तो झट से हाथ छुड़ा लिये और एक दूसरे से हटकर चलने लगे। उस लड़की ने मुझे आँख उठाकर देखा, तो सही; मगर रोज़ की तरह मेरा जुटाया हुआ ईंधन उस दिन नहीं लिया। वह नौजवान भी मुझसे वाक़िफ था; पर ग़ौर कुछ

बोले ही चलता बना। कुछ देर तक मैं उसी जगह ठगा हुआ-सा खड़ा रहा।

(४)

गाँव के मुखिया लोगों से मेरी दो बातें हो चुकीं। वे बोले—लड़कों को पढ़ने-लिखने के लिए फुरसत मिलना बहुत दुश्वार है, गुज़ारा करने का कोई न कोई तरीका उनके लिए ईश्वर ने ठीक कर ही रखा है। उस मतलब से पढ़ना लिखना बेकार है। फिर मैंने उन्हें बहुतेरा समझा-बुझाकर अपना मतलब गाँठना चाहा, बोला—विद्या पेट पालने के लिए ही नहीं सीखी जाती, ज्ञानोपार्जन द्वारा आत्मा को पहचानना ही उसका ध्येय है—वगैरह-वगैरह; मगर ये बातें मुँह से निकालते समय अन्दर की आत्मा चुटका ले रही थी—तुमने जीविका चलाने के निमित्त ही यह इल्म सीखा है, दूसरे लोग भी इसी मतलब से सीखते हैं और तुम इसी गरज़ से उन ग्रामीण बालकों को सिखाना चाहते हो?

उन लोगों ने मुझसे सवाल किया—आप हमारे बच्चों को कैसी विद्या सिखायेंगे? मैंने सबका नाम लिया—अंग्रेजी, तेलगू, हिन्दी, गणित, भूगोल और इतिहास आदि। मेरी लम्बी फिहरिश्त सुनकर वे लोग बोले—हमारे गाँव से एक लड़की तुम्हारी यही इल्म पढ़ने को शहर में चली गई थी, वहाँ से कोई आकर उसे बुला ले गये थे; क्योंकि वह बे-मा-बाप की थी। आखिर उसने सीखा क्या? बनाव-सिंगार की अमिट चाह, अपने देवी-देवताओं का मखौल उड़ाना, अपने गाँव और जमाअत के भाई-बहनों से घृणा, अपने मज़हब व मिल्लत से नफ़रत और सबसे बड़ी बात शादी न करना; लेकिन क्वाँरी रहने में

उसका कोई दोष न था, कोई उसे पसन्द नहीं करता था। इस तरह का जवाब देकर उन लोगों ने साफ जवाब दे दिया कि उन्हें वैसी तालीम दरकार नहीं, जो उनके देवताओं को भुलाना सिखा दे, चटक-मटक व बनाव सिंगार के फैशन का शौक पैदा करे और विवाह की प्रथा मिटा दे। आखिर को इतना मान लिया कि अगर मैं चाहूँ, तो रात के वक्त रामायण, महाभारत और भागवत पढ़कर सुना सकता हूँ; लेकिन ऐसी अनहोनी बात! कविता तो मैंने अंग्रेज़ी की ही पढ़ी थी तेलगू में ३३ सैकड़े से ज़्यादा नम्बर कभी पाते ही न थे। मैं उनके सामने किस तरह रामायण का अर्थ कर सकूँगा! यह किसी तरह असम्भव से कम नहीं। बिना जीभ तक हिलाये वहाँ से रुखसत हो चला आया।

वही सन्ध्याकाल की वेला, वही गोदावरी के किनारे का रास्ता, गाँव को लौट चलनेवाले नर-नारियों की वही टोलियाँ। बदस्तूर, मेरी आँखें उन्हीं झाड़ियों में जाकर उलझ गईं; मगर साफ साफ नजर आया कि झाड़ियाँ मुझे देखकर हँस रही थीं। उनके बीच में वनदेवी-सी विचरनेवाली उस 'उस' को एक झाँकी पाने के लिए मेरी नज़र नदी-तीर की तलाशी लेने लगी। वह एक जगह एक ऊँचे पेड़ की डाली पर बैठी हुई सूखी टहनियाँ तोड़-तोड़कर नीचे डाल रही थी। वह लड़का भी अपने बैलों को घर की तरफ फिराता हुआ उसी पेड़ के नीचे आकर रुका और लड़की की गिराई सब लकड़ियाँ टोकरे में जमा करने लगा। वह भी पेड़ की डाली से नीचे कूद पड़ी। डाली पर चिड़िया का फाँदना तुमने देखा होगा, पेड़ से लिपटकर बढ़नेवाली बेल पर ग़ौर किया होगा, वृंत-डंठी से खिसक पड़नेवाले फूल पर ध्यान

दिया होगा। बस, वही बात थी। नीचे पहुँचने पर उसकी आँखों ने लड़के के दिल में कुछ कह दिया। लड़का टकटकी बाँधे ज़रा देर देखता ही रहा। उसकी ऊपर को कसकर बाँधी हुई धोती, पीठ पर लटकती हुई काले बालों की लट, पैरों के कड़े, ओठों पर की मुस्कराहट और आँखों की तरावट—ये सब मानो उसकी किसी छिपी हुई बात को उस पर ज़ाहिर कर रही हों।

लड़के ने सहारा देकर टोकरी उसके सिर पर रख दी, दोनों मीठे सुरों से गाते चले आ रहे थे। पेड़ों के फूल एक-एक करके उन पर बरस पड़े। किनारे पर के टेसू के दो फूल तोड़कर लड़के ने उसके कानों में पहना दिये। पक्षी चहक-चहककर अपनी खुशी ज़ाहिर कर रहे थे, सूरज की लंबी-लंबी किरणों ने नदी की मेंड़ पर सुनहरे पाँवड़े बिछा दिये। सन्ध्या की दीप्ति में उनके चेहरे रोशन हो उठे। गोदावरी ठण्डी बयार के मार्फ़त अपने अनेकों आशीस भेज रही थी। जब वे दोनों मेरे निकट पहुँच गये, तो मैंने उन्हें आखिरी बार आँखें भरकर देखा और उनसे विदा माँगी। लड़के ने चलते-चलते कहा—महाराज, हमें कभी न भूलियेगा। लड़की सिर झुकाते हुए बोली—भैया, फिर हमारी बस्ती में कब चले आओगे?

मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि वह लड़की अपने सारे शरीर से, अंग-प्रत्यंग से, मेरी हँसी कर रही थी। जब वे बहुत दूर निकल गये, और आँखों के आगे सायंकाल के धुँधले अन्धकार के सिवा और कुछ नज़र न आई, तब मैंने गोदावरी की तरफ मुँह किया। साफ-साफ देखा कि वह भी मुझ पर हँस रही थी।

शहर का जादू

गुड़ियाटि वेंकटाचलम्

[श्रीवेंकटचलम बेजवाड़ा के निवासी हैं। १८९४ ई० में वैशाख की पूर्णिमा के दिन आपका जन्म हुआ था। संयोग से यही दिन बुद्ध का जन्म-दिवस भी है। कैसा विचित्र मेल! आप शिक्षा-विभाग में कार्य कर रहे हैं।

श्रीवेंकटचलम के पाठक तेलुगू के और सभी लेखकों के पाठकों से अधिक हैं। ये पाठक चाहे उनसे प्रसन्न हों या अन्यथा इसकी चिंता आप नहीं कर सकते। उनकी निंदा करनेवाले भी उतने ही हैं जितने कि उनकी प्रशंसा करनेवाले—पर निस्संदेह एक संपूर्ण युग का संचालन उनके हाथों हुआ है। एक समय था जब श्रीवेंकटचलम की रचनाओं ने उथल-पुथल मचा दी थी।

वेंकटचलम के हृदय में आग है, विद्रोह है। किसी भी नियम को जिसे समाज अन्ध-विश्वास से मानता आ रहा है, उसको आप नहीं मानते। नहीं मानकर बैठ भी नहीं जाते, बल्कि उसके विरुद्ध आग उगलते हैं। उसके माननेवालों को चुनौती देते हैं। आपकी दृष्टि इतनी पैनी और व्यापक है कि उससे बच निकलना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। वर्तमान समाज में प्रचलित सब प्रथाओं के खिलाफ आपने विद्रोह किया है। विवाह, प्रेम, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के प्रचलित सिद्धान्तों को झूठा साबित करना ही आपके तर्कों और पात्रों का प्रधान ध्येय रहता है। आपका सबसे प्रिय विषय Sex ही है। कहीं-कहीं तो वह सीमा को भी पार कर गया है।

तेलुगू भाषा पर आपका अधिकार प्रशंसनीय है। तेलुगू भाषा की शक्ति देखनी हो तो आपकी भाषा को ही आदर्श मानकर देख सकते हैं। तेलुगू का व्यक्तित्व आपकी भाषा में चमका है।

आपने हरिश्चन्द्र, सावित्री इत्यादि की विश्रुत कहानियों को अपने साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है। सनातनी दिमाग के लोग इनको पढ़कर आक्रोश से भर जाते हैं। मगर उनकी कल्पना और तार्किक शक्ति को इनकार नहीं कर सकते।

आपने सौ से ऊपर कहानियाँ लिखी हैं। सभों का विषय यौन, समाज-सुधार तथा रोमांस ही है। आपने कई उपन्यास भी लिखे हैं। वे भी वैसे ही हैं। आपकी तुलना कुछ अंशों में मोपाँसा से की जा सकती है।

आपकी रचनाओं में "कन्नीटि कालवा", "अमं हल्टा कालिन्दी", "पापं" "विवाहं" वगैरह बहुत प्रसिद्ध हैं। 'शहर का जादू' शीर्षक कहानी आपकी कम उग्र रचनाओं में से एक है।]

शहर का जादू

उस साल फ़सल खूब हुई। वीरारेड्डी के हाथ में तीन हज़ार नकद आये। बड़े समारोह से भगवती की पूजा हुई। वीरारेड्डी ने पचास रुपए मजूरी देकर अपनी औरत रङ्गम्मा के वास्ते मद्रास में कण्ठा बनवाया। बहन जानकी को रेशमी पाढ़ की साड़ी दी। दूध-दही के वास्ते एक नई भोरी गाय खरीदी।

वीरारेड्डी हरसाल माघ के मेले में नेल्लकर जाया करता था।

इस साल उसने रङ्गम्मा से भी चलने को कहा। इसके पहले भी उसने कई बार प्रस्ताव किये थे, मगर हर बार मा और रङ्गम्मा—दोनों ने विरोध किया। भला घर की बहू गाँव छोड़कर शहर जाय!—यह बात डर की ही नहीं, बेइज़्ज़ती की भी थी। मगर इस बार वैसा नहीं हुआ। नैहर, ससुराल और बीच के दो तीन टोले—बस यही रङ्गम्मा की दुनिया थी। शहर में होने वाली चोरियाँ, धोखेबाजियाँ, शराबख़ोरी, मोटरें, बस, साइकिल, सोडा, लेमोनेड—आदि की खबरें कभी-कभी उस दुनिया में पहुँच जाया करती थीं।

बीबी-मियाँ दस मील चलकर मोटर बस के वास्ते पक्की सड़क के किनारे खड़े हुए। वीरारेड्डी के वास्ते यह सफ़र, ये अनुभव मामूली थे—मगर रंगम्मा का हृदय यह सोच-सोचकर कि आगे क्या-क्या होगा, क्या-क्या आयेगा—उछलता था। इतने में 'भों-भों' करता हुआ, राक्षस की तरह, पीछे से धुँआ छोड़ता, बस आ खड़ा हुआ। 'बस' भरा हुआ था। फिर भी औरत को देखकर ड्राइवर ने अपने बगल में जगह करके बैठने को कहा। रंगम्मा ने वीरारेड्डी की ओर देखा। वीरारेड्डी भी चढ़ने लगा। तो बदमाशी की बोली में बोला—चमड़े का थैला लटकाये हुए—पैसा वसूलनेवाला - वहाँ कहाँ? पीछे चढ़ो। तुम्हारी औरत को कोई उठा नहीं ले जायगा।—रंगम्मा की नसों में रेड्डी-रक्त एक बार उबल उठा। ज़रा-सा बेअदबी से बोलने पर भैंसे जैसे नौकर को एक मुक्के में धँसा देने वाले वीरारेड्डी की ओर देखा रंगम्मा ने। मानों अभी वह उस मोटर वाले को चीरकर रखने जा रहा हो। लेकिन बिना कान-पूँछ हिलाये, कुत्ते की तरह उसके पीछे जा रहा

था वीरारेड्डी—कंधे पर गठरी रखे।—बिजली से भरे काले मेघ की तरह गाल हो गये रंगम्मा के। आँखें सूरज की तरह जलने लगीं। सिर उठाकर मुँह पर पड़नेवाले लटों को लंबी अँगुलियों से हटाकर वह देखती खड़ी हुई, उस ओर—मानो दुश्मनों के बीच में फँसी वीर राजपूतनी हो। तिरस्कार से भरे उस सुन्दर रूप के बस में हो गया ड्राइवर।

'बिना पति के यह नहीं चढ़ेगी जी!—आओ महाराज, तुम भी बैठो।'—ड्राइवर ने जगह करके दोनों को बिठाया। इतने लोगों के सामने पति के कंधे से कंधा भिड़ाकर बैठने से उसे शरम आई। बहुत परेशान हुई और आँखें नीची करके दोनों हाथ जाँघों के बीच दबाकर किसी तरह बैठ गई। भर-भर करती मोटर स्टार्ट हुई। पैर के नीचे कुछ सरकने-सा लगा। घबराकर रंगम्मा ने देखा। वह आवाज़ कहाँ से आती है? यह कैसे चली? पति से पूछा—उसने जवाब दिया—'कल पर चलती है'। इससे ज्यादह उसे कुछ मालूम नहीं। फिर पति की ओर से उसने ड्राइवर की ओर नज़र फेरी। चाल बढ़ती जाती है! क्या करता है वह? अद्भुत शक्ति-शाली जादूगर की तरह दीख पड़ा वह ड्राइवर।...गाड़ी...गाड़ी...मोटर सीधे बैल-गाड़ी के सामने जा रही है। सो भी इस तेजी से कि एक क्षण में जाकर उससे टकरा जायगी। अब क्या है? वह ड्राइवर के कंधे पर हाथ रखकर वह चिल्ला उठी—हाँ, हाँ—रोको—रोको—। सब लोग हँस पड़े। सब से ज्यादा हँसा वह मोटरवाला। सीधे जानेवाली मोटर बगल से बचकर चली गई। कैसे बचा लिया उसने? पीछे घूमकर देखा—धूल

में गाड़ी दूर पर दिखाई पड़ी। उसका मन अचरज से भर गया। सब लोग हँसे—उसे शरम आ रही थी। उसका व्यक्तित्व, रेड्डी-कुलावतंस लक्ष्मी रेड्डी के घर की बहू, उसकी बातें—उसके गहने, उसके बेदाग चरित्र, सबसे इज़्ज़त पाने आदि की भावना—सब लुप्त हो गये। यहाँ उसकी या उसके पति की कोई पर्वाह नहीं करता। अभी उन दोनों की जान बगल में बैठे हुए उस आदमी के हाथ में थी।...मोटर रुकी। बड़ा-सा काला कोट पहने कड़ी-कड़ी मूँछोंवाला एक आदमी सामने खड़ा हो गया।

'मेरी मामूली जगह है कि नहीं?'

'उठो जी, उतरो अब'— कहा ड्राइवर ने वीरारेड्डी से। वह डर से उतरने लगा। उसके पीछे वह भी उतरी।

'अजी, तुम्हारे लिए पीछे जगह नहीं है। वहीं बैठो।'

रङ्गम्मा हिली भी नहीं। सब लोगों की नज़र उसी पर पड़ रही है—यह सोचकर सिर झुका लज्जा से गड़ी जाती हुई वह अँगूठे से ज़मीन खोदने लगी—मानो धरती माता से पूछ रही हो कि अब क्या करूँ? कई मिनट बीत गये। मोटर खड़ी है।

'चढ़ो'—रेड्डी ने कहा। पति की आज्ञानुवर्तिनी बनी रङ्गम्मा। रेड्डी पीछे चढ़ने लगा।

'यह लाठी, यह गठरी—कौन हो जी तुम?'

'है कहीं का जानवर।'

सब हँसने लगे।

रङ्गम्मा का सिर घूमने लगा। ख़ून की गति मानो रुक गई। पीछे

घूमकर देखा। इच्छा हुई कहूँ—कौन है रे, बढ़-बढ़कर बोलनेवाला! अभी जीभ खींच लूँ...।' मगर...।

पीढ़ियों से किसी की बात न सहनेवाली रङ्गम्मा का खून विद्रोह कर बैठा। पति की ओर देखा उसने बेइज़्ज़ती को उपेक्षा की दृष्टि से देखनेवाले रेड्डी को देखकर उसे शरम भी आई और क्रोध भी। कौरव सभा में द्रौपदी की तरह उसने सिर झुका लिया। मोटर चली। रङ्गम्मा के वास्ते सारी दुनिया दुःखमय हो उठी। बहुत प्रेम से पाली हुई बछिया को हिंस्र-पशुओं की से घिरे हुए घोरारण्य में फेंकने जैसा लगा—रङ्गम्मा को। आँख खोलने में डर लगने लगा उसे।

बहुत देर हुई। मोटर रुकी तो उसने नेल्लकर आया, सोचकर आँखें खोलीं, नहीं। लोग आराम लेने के वास्ते उतर रहे हैं। वह भी उतरने लगी। आँचल किसी काँटे में लग कर फट गया। बगल की सीट पाकर आदमी छुड़ाकर मुस्कराने लगा। वह नीचे कूद गई। और कोई हँसा। उसने गुस्से से पीछे देखा। और कुछ लोग हँसने लगे। शरम और गुस्से से उसके पैर काँपने लगे। वह वहाँ से हट न सकी। बुखार की हालत में जिस तरह आदमी अर्थ-हीन माया-लोक में घूमता रहता है—वही हालत थी उसकी। उसको मालूम पड़ता था मानो सब लोग उसी को घूर रहे हैं—सब उसी का परिहास कर रहे हैं—सब उसी की दीनता बता रहे हैं। पुरुष छाया से अपरिचित पुराने जमाने की खान्दानी औरतों की मुग्धता दूसरों के विनय को भी नहीं सहन कर सकनेवाली सुशीलता पर गहरा घाव लगा। जल्दी-जल्दी चल कर इमली के पेड़ की आड़ में गई। पीछे से लाठी और मोटा लिये वीरा रेड्डी भी पहुँचा।

लाल रेशेवाली आँखों और दाँत से दबाने के कारण लाल काँपते हुए ओठों से, हवा से उड़नेवाली लटों को हाथ से थामकर सारी दानता कंठ में भर—रंगम्मा बोली—चलो,...घर लौट चलें।—उस के स्वर में अधीरता और क्षीणता थी।

'क्यों ?'

'मुझे अच्छा नहीं लगेगा।'

'नहीं'

'अभी कैसे लौटेंगे ?'

'पैदल।'

'बीस कोस है – यहाँ से।'

'ठीक है।'

'रात हो जायगी।'

'कोई हर्ज नहीं।'

'चोर।'

'कोई डर नहीं है।'

'ऐसा था तो आयी ही क्यों ? बिला वज़ह ही लौटना क्यों ?—इन औरतों के साथ यात्रा करने से यही सब बखेड़ा होता है।'

वीरारेड्डी चिढ़कर बोला था। वीरारेड्डी रंगम्मा को छोड़ दे, मगर मेला नहीं छोड़ सकता। साल भर मेहनत करने का फल बस—एक रात मेले में ही तो उसे मिलता है। पति को हमसे दुःख हुआ—यह बात सूझते ही अपने डर और तकलीफों को दबाकर चुपचाप मुँह फिराकर स्वीकार जता दिया उसने। नहीं सहन करने लायक बातों में भी

कर्म या धर्म मानकर खुशी-खुशी, बिना 'हाँ हूँ' किये, चुपचाप सहने की आदत उसकी कई पीढ़ियों से (स्त्री-जाति) चली आ रही है न ?

मोटर चली। मगर रंगम्मा का शिशु-हृदय कब तक सिकुड़ा बैठा रहेगा ? वह जाड़े की सुहावनी धूप, तरह तरह के बादल, नीला आसमान, हरे-हरे खेत—कैसा सुन्दर दृश्य ! पेड़, चिड़िया, घास-फूस उसके घर की ओर भागे जा रहे थे। मोटर के नीचे की सड़क नाच रही थी। ठंडी हवा उसके कपोल और आँचल को छूती हुई निकल जाती थी। एकाएक तकलीफों को फाँदकर उसका मन बाहर आ गया। दोनों बड़ी-बड़ी आँखें खोलकर, हाथ से लटों और जूड़े को सम्हालती हुई हँसते हुए ओठों से वह देखने लगी। मोटर का सीटी (Electriet horn) देना, सिर पर गठरी या कंधे पर बँहगी रखे लोगों का किनारे हो जाना, पुल, सड़क की मोड़ का आना और निकल जाना—यही सब वह देखती रही। ड्राइवर की नज़र उस ओर खिंची।

'कहाँ घर है ? रेड्डी हो ?'—वह कहता।

'फिर बजाओ ! कहाँ बजता है ?'

इन बातों से ड्राइवर को जरा उत्साह मिला।

'जोर से जाने दूँ ?'

'क्या करने से जोर से जायगी ?'

'मतर'

'झूठ'

'धीरे धीरे चलाऊँ ?—यह लो, नाले में गिर रही हो...गिराता हूँ...इसके पहले कभी मोटर पर नहीं चढ़ी हो ?'

'देखो, ऐसा जोर से चलाओ कि वह गाड़ी दिखाई न पड़े।... ऊँ हूँ—अभी दीखती ही है।...और जोर से...और ...बस...बस।'

'डर भी लगता है?'

'हाँ, बस करो। इसमें क्या डालते हैं? आग?...वह गन्ध क्या है?...झूठ। तेल डालने से कहीं चलेगा?...तुमको कैसे चलाना आया? रेलगाड़ी भी हाँक सकते हो? पाँवगाड़ी भी चलाना आता है?—तुमको क्या वेतन देते हैं? तुम बड़े हो या वकील मुख्तार?'

वहाँ बैठे लोगों को और परिस्थिति को भूलकर वह लड़कपन में जिस तरह पाठशाला के साथियों के साथ खेलने के समय दिल खोलकर बातें करती थी, उस तरह ड्राइवर से बातें करने लगी। उस समय उससे कोई कहता कि कभी अपने को भूलकर तुम ड्राइवर से बातें करोगी, तो वह खुद ही विश्वास न करती। बाद भी घर जाकर सोचेगी, तो अचरज होगा। उस उत्साह में उसकी पीठ पर किसी ने दो अँगुलियाँ रखीं—सो भी उसे मालूम न हुआ। फिर उस ड्राइवर के हृदय में उसकी बातों ने, हँसी ने, जूड़े ने क्या उथल-पुथल मचाया, उसे क्या मालूम? फिर नेल्लकर शहर के अन्दर पहुँचने पर जोर से सामने सनसनाती आती हुई मोटर पर किसी सुन्दर दम्पति को देखकर ही उसने सिर उठाया। महल, बँगले, बगीचे, पार्क, चिकनी सड़कें, दुकानें, औरतों की तरह-तरह की साड़ियाँ, बालों के फैशन—कितनी चीज़ें देखने को हैं—कितनों के बारे में पूछना है। उसकी आँखें दोनों तरफ़ उछलने लगीं।

मोटर रुकी। वीरारेड्डी ने पास आकर उतरने को कहा। रंगम्मा

ने उसकी ओर इस तरह देखा—मानो वह उसके साथ आया ही नहीं था—अभी सहसा मोटर में दिखाई पड़ा है।

उसने ड्राइवर की ओर, फिर पति की ओर देखा। ड्राइवर का छँटा बाल, ग्लासगो मलमल का कुर्ता, सुकुमार देह, छोटी मूँछें, मोटर की कलें ठीक करने की चातुरी; और इधर? फहराते हुए घोड़े जैसे कड़े बाल मोटा-झोंटा कपड़ा, मुँह बाये, भय-विह्वल नेत्र। इस अचरज भरे शहर में बहुत आसानी से, उपेक्षा से, निर्भयता से घूमनेवाला वह ड्राइवर और हलकी मूठ पकड़ने के सिवा और सब कुछ से अनभिज्ञ उसका पति। अब एकाएक उसकी आँखों के सामने अपने पति की व्यर्थता झलकने लगी। अगर यह मोटर उसके पति के हाथ में दी जाय!—रङ्गम्मा सर्द आह छोड़कर मोटर से उतरी और पति के पीछे हो ली।

वे गाड़ियाँ, शोर-गुल, बाजार, दूकानें, साड़ियाँ, दुसाले, तस्वीरें—आह! यहाँ के लोग कितने सुन्दर हैं! दूकानदार, सिपाही, भिखमङ्गा, गाड़ीवान—हर एक आदमी भी बड़ा आदमी ही है। सब लोग सफेद बगबग इस्तरी किये हुए कपड़े पहने कितने सुकुमार लगते हैं! सब लोग हिन्दुस्तानी, अंग्रेजी, तमिल बोलते हैं—कितने बुद्धिमान हैं? सब लोग उससे और उसके पति से बढ़कर सुखी हैं। मानो वह ऐसे स्वर्ग में पहुँच गई है—जहाँ दुःख और गरीबी नहीं है। बैंड बज रहा था। उसके पीछे आँखें चौंधिया देनेवाली साड़ियाँ पहने, मोटर पर चढ़ी औरतें जुलूस में आ रही थीं।

'हम लोगों को इस गाँव में रहने देंगे?'

'क्यों नहीं?'

'कब ?'

'लेकिन रहेंगे कैसे ?'

'क्यों ?'

'घर के लोग खेत पथार !'

'रहना चाहे तो रहने देंगे या नहीं ?'

'पगली कहीं की ! क्यो नहीं रहने देंगे ? कितने लोग यहाँ नहीं रहते ?'

'तो यहीं रहें !'

बिजली की बत्तियों, दुकानों को चौखट पर खड़ी होकर देखते रहना ही काफी है—यह भाव निहित था उसमें। 'तो यहीं रहें।' उसका मन खुशी से झूमने लगा।

'मगर यहाँ गुजारा ?'

'वहीं की तरह।'

'खेती कौन करेगा ?'

'और यहाँ के लोग ?'

'ये लोग अपना-अपना काम करके कमाते हैं।'

'आप भी।'

'मुझे क्या मालूम, कैसे होगा वह काम।"

हाँ और क्या मालूम होगा ? - वही अभागी खेती और हल चलाना ! रगम्मा के मन में एक नया भाव उपजने लगा। जिसको वह पुरुष श्रेष्ठ समझती थी, जिसकी वह खुद तथा गाँव के लोग भी इज्ज़त करते थे, नौकर-चाकर जिसके डर से थर-थर काँपते थे—वही वीर

रेड्डी इस गाँव में, इस भीड़ में, इन सड़कों पर, मोटरों के बीच में व्यर्थ है, निस्सहाय है, उपेक्षणीय है। उसने देखा—सब लोग निडर होकर मोटर के पास से होकर चले जाते हैं, मगर उसके देवता उसकी साड़ी का खूँट पकड़कर दस गज दूर भागते हैं—मोटर देखते ही रुपए गज़वाले रेशमी कपड़े को चार आने गज माँगा तो दूकानदार ने—'कभी मुँह भी देखा है रेशम का?'—कहकर तिरस्कार से देखा—उस रेड्डी-कुलभूषण को। काफी (कहवा) होटलों में सब लोग कुर्सी-टेबुल पर जलपान करते थे, मगर उसके प्राणनाथ को एक कोने में नीचे बिठाकर जलपान देते हुए भी उसने गौर से देखा था। उस समय उस ने अनुभव किया कि शादी के वक्त उसके घर के लोगों ने तथा गाँव के लोगों ने भी वीर रेड्डी की तारीफों के पुल बाँधकर उसे धोखा दिया था। उस समय पति की चालीस अंगुल चौड़ी छाती, माँसल गरदन, नाचती हुई आँखें, गाँववालों का उसकी हृदय से इज़्ज़त करना, उस गाँव के किन्हीं दस आदमियों को अकेले मारने की उसकी ताकत, उसका जानवरों के प्रति प्रेम, सम्बन्धियों के प्रति उदारता, उसका नीचता-विहीन शील—कुछ भी रंगम्मा को सूझ न पड़ा। वह सोचने लगी—दुबले-पतले, खाँसते हुए, सिल्क की चादर ओढ़े, सिगरेट पीते हुए, मजे ले-लेकर उसकी ओर तिरछी निगाहों से देखनेवाले एक युवक को देखकर कि उस नायडू की पत्नी कितनी बड़ी भाग्य-शालिनी होगी!

रंगम्मा का पुराना व्यक्तित्व चला गया। अपने गाँव के लोगों का वात्सल्य, छोटों की उसके प्रति भक्ति, सब लोगों का हर बात में उसका

मँह जोहना—आदि भाव उससे एकदम दूर हो गये। यहाँ पर वह किसी को जानती नहीं। उसके सुगुण, उसकी सास-ससुर पर की भक्ति, उसकी व्रत-पूजा के प्रति श्रद्धा, ब्राह्मण-भक्ति, उसके दो सौ बीघे खेत—इन सबके बारे में किसी को मालूम नहीं, कोई जानना चाहता भी नहीं। लेकिन वह यह देखने से न चूकी कि उसके सौन्दर्य ने सबको आकर्षित किया है। उस सौन्दर्य के कारण उसे यहाँ भी थोड़ी प्रमुखता मिल रही है। अपनी सौन्दर्य-प्रतिमा का लाभ पाने की प्रवृत्ति पहले-पहल उसमें अंकुरित हुई। एक-दो बार उसने नजरों से नजर मिलाई। दो-चार बार अपनी मुसकान से दो-चार हृदयों में आग सुलगाई। इस नई शक्ति की अनुभूति ने उसके हृदय में एक नये आनन्द को जन्म दिया। उस शहर की नवीनता, चारो तरफ़ का सौन्दर्य, फूलों और इत्र की सुगंध, शहनाई की मीठी आवाज़—सब ने मिलकर उसके उत्साह और रसिकता को उभाड़ा और मन में यह भाव पैदा किया कि किसी तरह 'यहाँ' जीवन धारण करके रहना ही सुख है—आनन्द है। हँसते हुए ओठ हिलती हुई कमर, फूलती हुई छाती—लेकर वह पति के पीछे चल रही है—जैसे गौतम के पीछे अहल्या।

× × ×

खट से बिजली जल उठी। इम्पीरियल बायस्कोप का पहला खेल खतम हो गया। दो घण्टे तक रङ्गम्मा चुपचाप कथा-नायिका में मिलकर एक हो गई थी। उसके भाग्य-अभाग्य को अपना मानकर वह सुख-दुःख अनुभव करती रही थी। अब उसने आँखें मलते हुए एक लम्बी साँस छोड़ी। शुरू में तो ये बत्तियाँ कैसे खुद ही जलती-बुझती हैं, ये

तस्वीरें कैसे आकर नाचने लगती हैं—आदि बातें ही उसे अचरज में डाले हुए थीं। मगर थोड़ी ही देर में वह सब कुछ भूलकर कथावस्तु में डूब गई। फिल्म में दिखलाई पड़ने वाले, महल, उद्यान, नहर, मोटर, रेल, सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष आदि दृश्यों को देखकर वह उसी लोक में पहुँच गई। लेकिन उसने अपने मन में समझा कि यह सब नेल्लूर में ही कहीं होगा। कथा-नायिका को दुःख में देखकर वह रोई थी। एक बार नायिका को अकस्मात चोर उठाकर ले गये तो वह चिल्ला उठी—लाओ भाला, मारो इसको। धीरोदात्त नायक जब कोई अद्भुत कार्य करता तो वह अपना हृदय उसे समर्पित कर देती थी। उसने कथा-नायिका की जगह पर अपने ही को समझा। अन्त में जब नायक ने नायिका का आलिङ्गन किया तो रङ्गम्मा को रोमाञ्च हो आया।—सब कुछ हो जाने पर भी वह वहीं बैठी रही—मानो और कुछ होगा। सब लोग जा रहे थे। वीरारेड्डी ने चलने को कहा तो उसे ऐसा लगा कि उससे इसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। थोड़ी देर में कुछ याद आने पर बोली - चलना चाहिये? हो गया? उसके सुन्दर स्वप्नलोक को ध्वस करके, उसको नीचे गिराकर, उसके असीम आनन्द को नष्ट करनेवाला महापापी की तरह दिखाई पड़ा वीरारेड्डी उसको। ज्वालाओं में पैठकर, चलती मोटरों से कूदकर, रेलगाड़ी रोक-कर, शत्रु-सहार करके लोक-रक्षा करनेवाले योद्धाओं (फिल्म के नायक) को छोड़कर इस गँवार रेड्डी के पीछे-पीछे गलियों में क्यों घूम रही है वह?—उसे वह दिखाई ही क्यों पड़ा? कहीं खो क्यों न गया? पैर घसीटती हुई वह उठी—

'कहाँ ?'

'बाहर।'

'उसके बाद ?'

'नाटक।'

'नाटक ?'

× × ×

रात के एक बजे। नाटक के पंडाल से रंड्डी और रंगम्मा—दोनों बाहर निकले। वह दिन खतम हो गया। रंगम्मा को बीस बरस के बाद एक दिन मिला था—वह पूरा हो गया। न जाने ये बत्तियाँ, ये सड़कें, यह इत्र की सुगन्धि, ये बैंड—फिर कब मिलेंगे। आज किसी ओसारे पर जाड़े में सिकुड़कर सोना, सवेरे ही मोटर या घर पहुँचना; फिर वही चूल्हा-चक्की, दाना-घास, दूध-मट्ठा, सास-ससुर की सेवा और नींद—बस यह शहर, यह खूबसूरती, ये नाटक, नाटक के वे कृष्णजी—सब को छोड़कर...। नाटक का वह कृष्ण, वह सौंदर्य, वह चातुरी, वह प्रेम भरी आँखें, वह संगीत-मधुरिमा—सब बातें याद आईं। दिल भारी हो गया। पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार करना शुरू कर दिया। लड़कपन से ही श्रीकृष्ण रंगम्मा के इष्ट देवता हैं। उस देवता के साथ उसने कितने ही खेल खेले हैं। एकान्त में उनसे कितनी ही बातें की हैं। उनके सामने शरमाई है। उनके बारे में अनेक स्वप्न देखे हैं। भागवत के पद पर क्षेत्रप्पा के (एक कवि) अनेक गीत उसने याद किये हैं; अपने भाव, अपनी तकलीफें सब देवता को निवेदित कर चुकी है। उस देवता ने आज—उसे साक्षात्-दर्शन दिया। इस नाटक के

कृष्ण के गुण और उसके इष्ट देव कृष्ण के गुण एक-से दिखाई पड़े। उसके मनोनाथ, मानधन चोर—यह कृष्ण ही तो हैं! कभी-कभी रात में जब पति उसके पास जाता तब आँखें बन्द कर, उसे कृष्ण मानकर अपने को धोखा दिया करती! रसिकों में रसिक, वीरातिवीर, आँखों में दया, सत्यभामा के प्रति नम्रता, उन्नत, सौम्य प्रणय, बातें करने की वह चातुरी, दृष्टि का वह सौकुमार्य, वह हँसी, वह वत्सलता,—उसके साथ एक दिन भी रहें—रह सकें तो? उन स्त्रियों में वह भी एक एक हो तो क्या वे 'नहीं' करेंगे? करुणाकर, वात्सल्य-वारिधि, प्रेमनिधि, गोपी लोचन-चातकाम्बुमणि!—उसे याद आया कि उसके सौंदर्य ने बहुतों को आकर्षित किया है। क्या उसको देखते ही कृष्ण की आँखों में ममता नहीं देख पड़ेगी? वह बगुले जैसी गर्दन और लिरबिरी आँखोंवाली सत्यभामा की ही उतनी मिन्नतें करते थे, गालियाँ सहते थे,—क्या इसके सौन्दर्य पर मुग्ध न होंगे? वह कृष्ण-वेषधारी था—यह बात वह जानती थी। मगर जानना नहीं चाहती थी। अगर वह माया दूर हो जाय तो वह माधुर्य, वह प्रमत्तता भी बिखर जायगी।—नहीं, वह कृष्ण ही थे। उसने कृष्णजी ही को देखा है, नमस्कार किया है, कितनी ही तरह की भावनायें आयी हैं उसके मन में। उसकी ओर देखकर ही तो उन्होंने दोहे पढ़े थे, उसी के बारे में तो उन्होंने गाया था; उसी के वास्ते तो वहाँ आखिर में आकर खड़े हुए थे! उसी की ओर देखकर तो वह मुस्कराये थे! अपनी भक्त को, अपनी दासी को उस स्त्री-समूह में भी उन्होंने पहचान लिया था।

'शिष्ट-जन-पालक, दुष्ट संहारक'—पद्य वह गुनगुनाने लगी। वह उसे बुला रहा है। उसके लिए भी जगह है। उस गोपीवल्लभ के हृदय में वह—दूर पर ललित मुरलीनाद कर रहा है। - हाँ वही तो है।—तो जाय वह! जाने से क्या होगा? इस दुनिया में, उस गँवई-गाँव के लोगों से उसको क्या मतलब? उसके कृष्ण यहाँ हैं, फिर उनके पाद-पद्मों में हृदय को छोड़कर वह कैसे जायगी उस गाँव को?

रंगम्मा की विचार-सरणि में उथल-पुथल मचने लगा। उसकी दुनिया ही बदल गई। वह जिन व्यक्तियों की जिस तरह श्रद्धा से पूजा करती थी—वे सब काग़ज़ के पुतले की तरह गल गये। उसका पुराना 'अहं' भाव नष्ट हो गया। आनंद के नये दरवाजे खुल गये। अब तक उसने जिन सुखों, आनन्दों और विचित्रताओं का अनुभव नहीं किया था—आज वे उसकी आँखें खोल रही थीं। खुद देखते हुए भी अनुभव नहीं कर सकने लायक, झलक दिखाकर गायब हो जानेवाले गूढ़ दूराकर्षण ने उसके साथ जबर्दस्ती की। उसके चारो ओर विस्तृत शहर का जादू कहने लगा—'तुम मेरी हो। छोड़कर मत जाओ। इस प्रकाश से, इस आनंद से, इस प्रतिक्षण नूतन विकास से—अन्धकार में, साधारण में, मृत्यु में—मत पड़ो—मत जाओ।' छोटे-से कोने में इतने दिनों तक पंख बाँधकर पड़ी हुई रंगम्मा की आत्मा एकाएक फड़-फड़ाकर अनन्त नीलाकाश में उड़ने लगी।

और वह सारा आवेश रातवाले कृष्ण में मूर्तिमान् हुआ। यह उत्साह, यह उद्रेक कृष्ण के सौंदर्यामृत के कारण ही उत्पन्न हुआ। कृष्ण ही इतने रूपों में उसके हृदय-पद्म पर नाच रहे हैं। वह बुला

रहे हैं। वह ललित मुरली-नाद ही तो है। वह समीप आकर बुला रहे हैं। उनके पास चली जाने से ?—सन्देह क्यों ? जाने से क्या होगा ? यह तुच्छ संसार, घर-द्वार, कूटना-पीसना, दूध-दही—इन सब से उसका क्या सम्बन्ध ? वह कौन है ? वह पति कौन है ? उससे उसका क्या सरोकार ? कृष्णजी—भगवान हैं, भक्त-वत्सल हैं, उनसे बढ़कर अपना कौन होगा ? अब जाना ही चाहिये—चाहे कुछ भी हो।—लेकिन कहाँ ? नाटक होते समय कृष्ण जब रंग-मंच पर नहीं होते तो वह अन्य पात्रों की ज़रा भी परवा न करती। साइड विंग्स में आँखें गड़ाकर बैठी रहती। भीतर कृष्ण क्या कर रहे होंगे ! वहाँ कितना अच्छा होगा ! लड़कपन में उसने भागवत के जो पद्य वैकुण्ठ-वर्णन के सम्बन्ध में पढ़े थे—वे एकाएक आँखों के सामने फिर गये। वहीं उसी पर्यंक पर पर्दे के पीछे—कोठरियों, आइनों, कुर्सियों को पारकर वह भी पहुँच गई है। दासियाँ सेवा कर रही हैं उनकी। वह उनकी बगल में उसी पर्यंक पर बैठी है।—उसका शरीर कंटकित हो गया।...हाँ, वहीं जायेगी वह। वही तो कृष्ण का निलय है। वे ही महल हैं, वे ही सौध हैं। जाना ही चाहिये। उस अमेयानन्द में सन्देह करना नीचता है। जान हथेली पर लेकर मारने-मरनेवाला पूर्वजों का रक्त उसकी नसों में जोर से बहने लगा।—'कृष्ण तुम्हारे लिए ही यमुना-सैकत-तट पर विरह के गीत गा रही है। जाओ। फिर उन पुरानी झंझटों में, चूल्हे-चक्की में मत फँसो'—कहने लगा उसका हृदय। लेकिन सिर झुकाये आगे जानेवाले पति का क्या करे वह ? यह सब कुछ समझ में क्यों नहीं आता है ? वह क्या बज रहा है ? वेणुनाद है ? वह खड़ी हो गई। वीरारे-

डुडी ने पीछे घूमकर देखा। बुलाया। वह नहीं बोली। उसने जोर से पुकारा। रास्ता जानेवाले लोग रुककर देखने लगे।

'तुम्हारा कंठा कहाँ है?'

रंगम्मा ने आँख उठाकर देखा।

'तुम्हारा कंठा?'

'कंठा! कंठा क्या? बेकार यह हल्ला क्यों?' स्वप्निल आँखों में प्रश्न भरकर देखा उसने।

'वैसे क्या देखती हो? तुम्हारा कंठा गया।'

गया! इतना ही न? तो क्या हुआ? यह हल्ला-गुल्ला क्यों?—इस उत्सव में, इस स्निग्ध रात्रि में इस वेणुगान के वक्त—इस समय कंठा! वह अभागा कंठा कुछ भी हो!

'अरे बोलती क्यों नहीं—कंठा?'

'नहीं है?'—वह बोली।

वीरारेड्डी को अचरज हुआ।

'और धीरे से पूछती है—नहीं है। कहाँ है?

'शायद गिर गया कहीं।'

'पाँच सौ रुपए का कंठा। कहाँ गया?'

'पता नहीं।'

'पता नहीं? होश में नहीं हो? चलो—अभागी! चलो न अब!'

मगर रंगम्मा सुनती कहाँ है। घूमकर उसके पीछे-पीछे तेज़ी से जाने लगी, मानो स्वप्न-लोक में विचरण कर ही रही हो। घर, गाड़ी, आदमी, लालटेन—सब मानो तूफान में पड़े भागे जा रहे है—मानो

उस वसन्तोत्सव के प्रवाह में उसके पैर भूमि पर नहीं हैं—बल्कि एक अनिर्वचनीय, अनन्त, अदृश्य अनुभव प्राप्त करने के लिए उसका हृदय ही उसे धकेलकर लिये जा रहा है। दोनों उस नाटक वाले पंडाल के पास पहुँचे। रोशनी बुझ गई थी, इस लिए रंगम्मा पहचान न सकी।

'तुम यहाँ खड़ी रहो, मैं देख आता हूँ।'

कंठा! किसके लिए! पागलपन!

धीरे से घूमकर देखा उसने। कुछ लोग बात-चीत कर रहे थे। वह नाटकवाले पंडाल के पास ही खड़ी है—उसे अब मालूम हुआ। उसके भीतर ही तो उसके श्रीकृष्ण हैं। वह वहीं खड़ी रही—शायद कृष्णजी बाहर आयें। मगर उसे अन्धेरे में लोग देखें तो? क्या कहेंगे? उसका हृदय धड़कने लगा।

'किसके लिए खड़ी हो?' किसी ने कहा।

उसने निश्चय कर लिया था। मगर अपना निश्चय ही उसे भयकर प्रतीत हुआ।

'कृष्णजी के लिये।'

'कृष्णजी! कौन कृष्णजी!'

कैसी बेवकूफी है! पूछता है कौन कृष्णजी! कौन कृष्णजी क्या? उसने फिर सोचा—शायद उनका नाम कृष्णजी न हो।

'आज कृष्णजी बने थे न?'

'कृष्णजी बने थे न'—यह कहते हुए भी उसने अभिमान का ही अनुभव किया।

'ओहो—नारायणराव ?'

वह चुप रही।

'जानती हो उसे ?'

उनको नहीं जानना कैसा ?

'इधर आओ।'

पैर काँपने लगे। क्या सचमुच दर्शन होंगे ? सचमुच ! अभी ही ?

'यहाँ ठहरो'—कहकर वह आदमी भीतर गया। वह दरवाजे के पास खड़ी थी। उसने चारो तरफ देखा। अन्धेरा, धूल, गंदगी—ओह, ऐसा क्यों है ? यह कृष्णजी के रहने का घर है ? नहीं। वे यहाँ नहीं रह सकते। उसने सोचा—मैंने गलती की। ठीक जगह पर नहीं आई। अगर कृष्णजी आयें और पूछें कि तुम कौन हो ? वह क्या जवाब देगी ? वह उनके पैरों पर गिरकर आँसुओं से चरण पखारकर कहेगी कि प्रभो, मेरा जन्म पावन हो गया और उनके मुख-कमल की ओर देखकर...अभिलाषाओं का बाँध टूट गया.. फिर...एक बार...।

× × ×

'अरे, तुम्हारे लिए कोई आया है !'

'कौन है रे !—वही अभागा बेंकट्राम तो नहीं है ? उसका चार आना बाकी है, उसके लिए जान खा रहा है।'

'नहीं रे, कोई गोपिका है !'

'चल, चल।'

'सच, जाकर देख भी।'

आ रहे हैं। वह लजाई। मुँह फिराकर एक कोने में सट गई।

काँपती हुई देखने लगी। पीताम्बर खोले, जुल्फोंवाला टोपा (wig) हटाकर, मुँह का रंग बिना साफ किये, लाल रंगे हुए ओठों में सुलगती बीड़ी दबाये प्रत्यक्ष हुए 'नटराज मातण्ड'—उपाधिधारी श्री एम० नारायणरावजी।

'कौन है ?...क्या बात है ? बोलो...'

कौन है यह ? ऊँह कैसा...। धीरे-धीरे कोने में सटने लगी वह। धीरे-धीरे सत्य भी सामने आने लगा।

मगर वह पूछ रहा है, बोलना चाहिये। अब क्या करे वह ! मगर कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।—असल में वह आई ही क्यों ?

'आज आपने बहुत अच्छी तरह गाया।'—आगे क्या कहना चाहिये ?—वह इसकी ओर गौर से देख रहा है।

'कौन ?—कौन हो तुम ?'

चुप रही। वह क्यों आई है यहाँ ?— वह वैकुंठपुर के रमा विनोदी यही हैं ! यही ! उसे पुनः भागवत वर्णन याद आया।—और भीतर जाकर देखें ? लेकिन क्या यही कृष्ण हैं ? कौस्तुभालंकारी, कमनीय कंठवाला, त्रिलोक-सुन्दर, रुक्मिणी-वल्लभ—यही हैं ! मन उसकी इच्छाओं के विरुद्ध खड़ा हो गया।

'आपको देखने के लिए'—जबर्दस्ती कहा उसने।

'इधर आओ, बैठो।'

चला जाना चाहिये। मगर कैसे ?

'अब मैं जाती हूँ।'

'अभी ही ?'

'वे उधर खड़े होंगे।'

'कौन ?...कहाँ ?...रहने दो।...अभी चली जाना।'

भीतर रोशनी थी। उसमें उसकी शरम से झुकी जाती हुई कमर, उसके गालों की चिकनाहट, उसके केश-पाश,—इन सबों ने नारायण के मन को मोह लिया। 'आओ' कहता हुआ वह पास आया। अब कैसे ? वह पास आ रहा है। और पीछे हटी वह। जाना चाहिये। मगर कैसे ? वह कंधे पर हाथ रखकर पीछे खींच रहा है। हँस रहा है। छीः क्या ! घृणित। यह कैसा कृष्ण है ? इस तरह पकड़ता है...कैसा आतुर...।

'ठहरिये—सुनिये।'

'मेरे ही वास्ते आई हो न ? आओ चली जाना न ? अभी जल्दी क्या है ?'

'आप भूल कर रहे हैं—मुझे छोड़िये।'

शराब की गंध से उसकी नाक फटने लगी। 'पास आओ' उसने खींचा। वह पसीना छिः छिः। कोट की कैसी बदबू है ? अव्वाः, यह क्या ? मुँह से बीड़ी की गंध ! यह ओछी हँसी ! आँख कैसी घृणित ! कैसा फफसा हुआ शरीर।—अब उसको याद आई उस पति की जिसके बलिष्ठ-पुष्ट शरीर को देखकर ही वह खुश हो जाती थी जो अभी कहीं कंठा खोज रहा होगा। उसके ऊपर दया आई उसे। याद आई उसकी करुणा भरी आँखें—जब उसको नहीं पाकर वह चिन्तित हो रहा होगा। कंठा—पाँच सौ का खो गया, मगर जिसने एक कड़ी बात तक नहीं कही। कितनी उदारता ! सब बातें याद हो आईं। अरे अँधेरे में घसीटे जा रहा है।

'रेड्डी-रेड्डी !' आज पहली बार जीवन में पुकारा पति को उसने।

पैर की आहट मालूम हुई।

'कुछ नहीं है जी, तुम लोग इधर मत आओ।'

'क्यों आई तो ? मेरे ही वास्ते न ? फिर यह क्या ? अगर तुम्हारी आवाज सुने ही तो अन्दर आकर क्या करेगा ? तुम्ही न मेरे पास आई ?'

थोड़ी आशा थी—वह भी खतम हो गई। ठीक तो, उसे (पति को) अब वह क्या जवाब देगी ?—चिन्ता, गालियाँ, जाति-बहिष्कार...नहीं।...ओह, मगर यह कैसे सहा जाय ? वह छटपटाई, मगर...।

उसी रंगमंच पर कितनी ही बार द्रौपदी की मान-रक्षा की है भगवान ने, उसी मंच पर हरिश्चन्द्र के सत्य की रक्षा हुई है, प्रह्लाद की रक्षा हुई है—मगर अबकी बार क्या सबों ने कान-आँख बन्द कर लिये ! उनका विश्वास करके, उनके प्रतिरूप का हाथ पकड़कर आर्तनाद कर रही है। कहाँ हैं वे ? उनको सुनाई ही नहीं पड़ता। अरे वे कहीं लक्ष्मी की मीठी-मीठी बातें सुनने में मग्न होंगे या तुम्बुई ऋषि का अश्व-संगीत सुन सुध-बुध खो रहे होंगे। उन्हें इतनी...।

'अरे बाप रे...नहीं, नहीं। मैं नमस्कार करती हूँ। मैं बेवकूफ हूँ, मूर्ख हूँ—मुझे छोड़ दो। पैरों पड़ती हूँ। मैं इसलिए नहीं आई। हा ! क्या कोई नहीं है ?'

दुःखहारी द्वारकानाथ वहाँ नहीं थे। साइड कर्टेन पर सरस्वती और

पार्वती के चित्र आँखें फाड़कर यह अन्याय देख रहे हैं। रंगम्मा के व्रत और पूजा, उसके देवी और देवता—सब चुप निस्सहाय बैठे रह गये। कोई भी उसकी रक्षा करने नहीं आये।

देहाती रंगम्मा का शील नागरिक सभ्यता देवी के आगे बलि चढ़ गया।

मंगल-सूत्र

पि० के० राघवशास्त्री

[श्री पि० के० राघवशास्त्री तेलुगू के प्रमुख लेखकों में हैं। आपकी शैली आकर्षक है और आपकी कहानियों में मनोवैज्ञानिक गहराइयाँ भी मिलती हैं।

'मंगल-सूत्र' आपकी कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है और एक अनुपम कृति है। एक मनोवैज्ञानिक सत्य का भी यहाँ उद्घाटन किया गया है। एक जुआरी का यहाँ मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है और फिर उसके परिवर्तन का भी आयोजन किया गया है, जो बहुत ही सफल बन पड़ा है। प्रत्येक दृष्टि से यह कहानी एक सफल रचना है।]

मंगल-सूत्र

रात के नौ बजे थे। बाला अभी रसोई-घर में अपने पति के जूठे पत्तल में भोजन परोस रही थी।

रामनाथ बरामदे में चारपाई पर बैठा हुआ था। दस मिनिट के पहले जब वह भोजन कर हाथ धोने के लिए बाहर गया था, तब उसका मित्र शेखर चुपचाप कुछ कहे बिना अपनी राह पकड़ता तो अच्छा होता—किन्तु वह रामनाथ के पास आकर धीमे स्वर में कह गया कि

'देखो, रामनाथ ! आज रात को क्लब में खेल होगा। बड़े-बड़े लोग आयेंगे। हमारे जागीरदार का लड़का भी आयेगा। तुम भी आओगे न ? क्यों ?' जब शेखर बड़ी प्रसन्नता से यह समाचार कह गया, तब से रामनाथ के हृदय का द्वार—जो अभी-अभी भरने आ रहा था, जले पर नमक-सा छिड़क गया। भाव-तरंगों में वह बेदम होने लगा। घुटनों पर कोहनियाँ रख सिर झुकाकर जमीन पर बैठ गया। उसके मुँह से दीनता झाँक रही थी। आँखें बड़ी चिंता से जमीन की ओर ताक रही थीं।

जिसके कारण बाप और बेटे को अलग-अलग होना पड़ा, पिता के यहाँ से हिस्सा बाँट के बाद रामनाथ ने पच्चीस एकड़ की तर जमीन को (Wet land) बरबाद किया। आखिर बाला के जेवरों को भी बेचने पर उतारू हुआ। ताश की उस बुरी लत से तंग आकर एक मास के पहले ही रामनाथ ने उसे न छूने की कसम खाई थी।—पर शेखर के आने के बाद फिर खेलने की इच्छा तीव्र होने लगी।

तब कई सालों के पुंजीभूत अनुभव-ज्ञान ने चुटकी बजाते हुए आगे बढ़कर कहा—'ख़बरदार ! इतनी हानि उठाने पर भी तुम्हारी अक्ल अब तक ठिकाने पर नहीं आई ? क्या धन के साथ-साथ तुम्हारी अंतरात्मा भी चली गई ? ज़रा सोचो तो—तुम्हारा शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा है। तुम्हारा गौरव मिट्टी में मिल गया है। क्या, ताश ही के कारण तुम्हारा मुँह दरिद्रता-देवी के लिये रंगमंच-सा नहीं हुआ ? तुम्हारे पूर्वजों ने खून पसीना एक करके जो पैसा कमाया था

और बड़ी ही सावधानी से जिसकी रक्षा करते आये थे, एक मिनिट में - पलक मारते ही—कौड़ी भी बचे बिना तुम्हारे हाथ से निकल गया, क्या वह इस ताश के व्यसन के पीछे नहीं था ? हर बार तुम्हें हारने के सिवा क्या लाभ हुआ ? 'शायद इस बार जीत सकूंगा' इस तरह अपने मन को धोखा देते हुए तुमने विजय के लिए कितनी बार व्यर्थ प्रयास नहीं किये ? इस जवानी में ज्ञान प्राप्त करना तो दूर रहा—ताश मिलाते हुए, अपने दुर्भाग्य पर रोते हुए, कभी-कभी एकाध बार जीतने पर भी 'स्वल्प लाभ' कहते हुए—मृग-तृष्णा में पड़कर कितनी बार अपना अमूल्य समय व्यर्थ नहीं बिताया ?—अब भी चेतो—ताश और जुआ मनुष्य को विनाश की ओर ले जानेवाले तथा जीवन में अपयश के काँटे बिछानेवाले रुचिहीन पदार्थ हैं।

'ओह' कहते हुए रामनाथ ने एक गहरी साँस ली—जैसे कोई मजदूर बड़ा भारी बोझ ढोते हुए थक गया हो।

चारपाई पर से उठकर वह इधर-उधर टहलने लगा। पिता के यहाँ से अलग होने के बाद—अब तक - इन दो वर्षों में—उसने जो घृणित व्यवहार किया था, उसे याद कर अकथनीय मनोव्यथा का अनुभव किया। उस तरफ़ से अपने विचारों को बदलने का प्रयत्न करने लगा।

दक्षिण दिशा की खिड़की के पास खड़े होकर उसने बाहर मैदान की ओर नज़र डाली। चाँदनी छिटक रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। मंद पवन के ठण्डे झोंके अंदर प्रवेश कर उसके मुख को सतेज करने लगे।

वह धीरे से गुनगुनाने लगा—'अब करीब साढ़े नौ बजे होंगे।'

परदे की आड़ से मोहमाया की ध्वनि निकली—'हाँ, एक आधे घण्टे में खेल शुरू होगा।'

'क्या! मैं भी चलूँ?'

'सिर्फ आज रात को खेलने जाओगे तो ऐसा कौन-सा व्रत-भंग होगा?'

'पर मेरे यहाँ तो आखिर एक कौड़ी भी नहीं है।'

'बाला से जरा जाकर पूछो तो!'

'बेचारी उसके पास है ही क्या? जो कुछ था सब दे ही चुकी।'

'अब बचा है उसके गले में एक—'

'वह काम करने को मेरा जी नहीं मानता।'

'ऐसा मत कहो। कौन जाने, शायद अब की बार तुम्हारा भाग्य जग उठे! निराश मत होना।'

'जैसा हो, आज रात को खेलने के लिए मेरे प्राण तड़प रहे हैं।'

रामनाथ पीछे मुड़कर शयन-गृह के चौखट पर आया। बाला अन्दर बिस्तर बिछा रही थी। वह अभी-अभी भोजन कर रसोई-घर साफ करके आई थी।

× × ×

बाला बिलकुल भोली लड़की थी। उसके मुख पर अल्प सतोष तथा आँखों से नित्य प्रसन्नता दिखाई देती थी। पत्थर के समान कठोर हृदय रखनेवाला भी उसका हँस-मुख चेहरा देखकर पिघल जाता था। ताश खेलते-खेलते उसके पति ने जायदाद ही नहीं—घर का सामान भी बेच डाला था। छः महीनों से वे रोटी के लिए भी तरसने लगे।

अपने गहनों तथा भावी जीवन का अमूल्य सुख लूटनेवाले पति के ऊपर वह जरा भी क्रोध प्रकट नहीं करती थी। जैसे तैसे—अपने प्रभु को खिलाना और सब तरह से संतुष्ट रखना यही उसने सीखा था। उसके इस सरल स्वभाव पर आधुनिक महिला-समाज आश्चर्य प्रकट करता है कि ऐसे ज़माने में इस तरह की भोली लड़की आखिर क्योंकर पैदा हुई ?

बाला अपने सास-ससुर की लाड़ली बहू थी। यहाँ तक कि वे उसे अपनी जान से भी अधिक समझते थे। वे अपने पुत्र की अपेक्षा बहू को बड़े आदर और प्रेम की दृष्टि से देखते थे। जब रामनाथ अपने पिता से लड़-झगड़कर, जायदाद बँटाकर उसी गाँव में एक दूसरे मकान में रहने जा रहा था, तब उसकी माता बाला को अपने अंचल में छिपाकर बहुत देर तक रोई थी। अब भी वह कभी-कभी बाला को देखने आया करती थी। पुत्र के बुरे आचरण से भली भाँति परिचित रहने के कारण वह जब कभी आती थी तो अपनी बहू को कुछ न कुछ दे जाती थी, जिससे बहू किसी प्रकार का कष्ट न उठाये। बाला, जहाँ तक हो सके भोजन के पदार्थ जमा करती थी और जो कुछ बचता था, उसे अपने पति के जेब-खर्च अथवा जुए के लिए पूछने पर दे देती थी। रामनाथ ताश के खेल में सब कुछ गँवाकर भी, बाला के कारण ही अबतक ठीक समय पर भोजन प्राप्त कर रहा था।

उसका पिता पुत्र की इस बुरी दशा पर तरस नहीं खाता था। अगर उसके पिता को मालूम होता कि मेरी स्त्री बाला को कभी कभी मुझसे कहे बिना पैसा दे रही है, तो शायद वह कभी का आग-बबूला हो गया

होता। यद्यपि बाला के प्रति उसका असीम स्नेह तथा विशेष आदर था, फिर भी उसका यह विचार था कि और भी कष्टों का स्वाद चखे बिना रामनाथ सीधी राह पर नहीं आयेगा। उसने कितनी ही बार अपने बेटे को तोते की तरह पढ़ाया था कि 'बेटा! ताश का खेल हमारे योग्य नहीं है। उसके कारण कई लखपति भी भिखमंगे बन गये हैं। वह मनुष्य को दरिद्रता की ओर घसीट ले जाता है। बुरे काम करने का उपदेश देता है। व्यभिचार का दोष भी सिर पर लगाता है। अब भी सुनो, पीछे पछताने से कुछ हाथ नहीं लगेगा।' लेकिन क्या रामनाथ ने इस उपदेश पर ध्यान दिया?

अनुभवी सज्जनों का कहना है कि गुरु के वचन अत्यंत निर्मल होते हुए भी कर्ण-स्थित सलिल की भाँति मूर्ख को वेदना पहुँचाते हैं। ठीक वैसा ही हुआ। रामनाथ ने भलाई चाहनेवाले अपने पिता के हितोपदेश को टाल दिया। कोट-बूट पहनकर भलमनसी का स्वांग रचकर जिन मित्रों ने उसे जुए में घसीटा था, उन्हीं पर उसने विश्वास रखा। अमीर होने के कारण ही मित्रों ने, अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए रामनाथ को अपने जाल में फँसाया था। वास्तव में रामनाथ का स्वभाव सरल था। नम्र भी था और आसानी से झट किसी पर भी विश्वास करनेवाला था। इन्हीं सद्गुणों ने उसे निर्बल बना दिया था। जो देखने में बड़े सज्जन मालूम पड़ते थे, उन पर तुरन्त भरोसा रखकर समझता था कि ये नीति-मार्ग से कभी हटनेवाले नहीं हैं। आखिर उन्हीं लोगों ने उसका सर्वनाश किया। इन्हीं रँगे हुए सियारों के कारण बाप-बेटे को अलग होना पड़ा। जब तक कुंजियाँ रामनाथ के

पिता के हाथ में रहीं, तब तक रामनाथ इच्छा के अनुसार पैसा खर्च नहीं कर सका था। मित्र-गण भी उससे फ़ायदा नहीं उठा सके थे। अतएव उपदेश देकर उन लोगों ने रामनाथ को पिता से अलग कर डाला। पिता ने कई बार समझाया पर उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। आखिर पिता ने यही सोचा कि मुझे क्या पड़ी? जब ठोकरें खायेगा, तभी होश में आयेगा। अन्त में उन्होंने अपने बेटे को आधी जायदाद बाँट दी। रामनाथ उसी गाँव में किराये पर एक घर लेकर दिन काटने लगा।

उसका पिता अनुभवी तथा दूरदर्शी था। स्वप्न में भी उसका यह विचार नहीं था कि रामनाथ अपनी बाकी आधी जायदाद हिफाजत से रखेगा। इसलिए उन्होंने बैंक में जो नग़द पचास हजार रुपए गुप्त रूप से छिपाये थे, उसमें से लड़के को भाग नहीं दिया था। इन नगद रुपयों का रहस्य रामनाथ को मालूम ही न था।

रामनाथ के हिस्से में पच्चीस एकड़ की उपजाऊ तर जमीन आई थी। आज़ादी मिल गई। पिता का उपदेश अब सुनने की ज़रूरत ही न थी। उसे और क्या चाहिये?

काल-चक्र घूमने लगा। इधर रामनाथ धीरे धीरे एक-एक एकड़ बेचता जाता था। पिता अपने लड़के के आचरण को देख ही रहा था। लड़के ने जो ज़मीन बेच डाली थी, अपने यहाँ के नग़द रुपए एक मित्र को देकर वह उसे खरीदने के लिए कहता था। पीछे, अपने काबू में कर लेता था। इसी तरह उन्होंने अपनी पैतृक-सम्पत्ति को दूसरों के हाथों में जाने से रोका। यह बात रामनाथ को मालूम न थी।

उसे ही नहीं, और किसी को भी न मालूम थी। पिता का यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि आगे जब रामनाथ बिलकुल गरीब हो जायेगा, कष्ट सहते हुए दाने-दाने के लिए तरसेगा, और आखिर मेरे पैर पकड़ेगा, तब उसे यह खरीदी हुई जमीन वापस कर दी जाय। परंतु वह चाहता था कि यह जमीन बाला के नाम पर रख दूँ तो फिर बेचने की नौबत न आयेगी और किसी तरह की तकलीफ के बिना घर का खर्च चलता रहेगा।

इस प्रकार सास-ससुर का आदर प्राप्त करनेवाली स्त्री संसार में शायद ही कोई होगी। यही नहीं—जुआरी होते हुए भी रामनाथ बाला के सद्गुणों के प्रभाव से मुग्ध होकर अपने चरण-कमलों की पूजा के लिए अवश्य स्थान देता था। रामनाथ के हृदय में उसके प्रति एक गौरवनीय स्थान था। उसके सम्मुख वह अपने असभ्य आचरण पर पछताता था। बाला के नेत्रों में निहित पवित्र ज्योति के कारण ही सत्यानाश करनेवाले ताश के खेल पर उसे विरक्ति पैदा हो गई थी।

× ×

बाला ने चादर झाड़ते हुए बिछौने पर बिछाकर चौखट के पास खड़े रामनाथ की ओर देखा। उसके मुख पर सहज मुस्कान दौड़ आई। पूछा—क्या, सो जाइयेगा? —अभी नींद आ रही है?

उसने कहा—बाला?—इसके सिवा उसके मुख से एक शब्द भी न निकला। कुछ देर तक उसकी ओर ध्यान से देखकर अपना मुह मोड़ लिया।

बाला बिछौने को वैसे ही छोड़कर उसके सामने आई। कहने लगी---'क्या, कुछ तबियत खराब है' ?

रामनाथ चुपचाप भीतर आकर चारपाई पर बैठ गया। बाला उसके पैरों के पास बैठ, सिर उठा कर अपने पति की ओर उत्सुकता से देखने लगी।

लाचार हो एक लज्जाजनक दुष्कर्म करने की इच्छा से मुँह लटका-कर खड़े हुए पाप भीरु की भाँति उस कमरे के अन्दर की हवा भी स्तंभित हो गई।

कुछ देर के उपरांत रामनाथ ने कहा---बाला ! क्या, तुम्हारे पास कुछ पैसे हैं !

बाला ने विनय-पूर्वक मधुर कण्ठ से उत्तर दिया—नहीं तो।—एक आना था उसका अभी नमक खरीद लिया। बताइये आपको कितना चाहिये ?

रामनाथ ने उस समय कुछ जवाब नहीं दिया। आखिर बोला—बाला ! आज मेरा जी फिर खेल की ओर दौड़ रहा है।

एक महीने के पहले रामनाथ ने ताश न खेलने की जो प्रतिज्ञा की थी वह उसे याद आई। आज फिर से उसके अस्थिर मन की व्यग्रता देखकर वह बहुत दुखित हुई।

पर उसने कभी अपने पति की बात नहीं टाली थी। उपदेश भी कभी नहीं देती थी। वास्तव में उसने कभी ताश के खेल से अपने पति का मन फिराने की कोशिश ही नहीं की थी। शान्त स्वर में बोली---'मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। क्या किया जाय ?'

तब रामनाथ ने अपनी जादू भरी उँगलियों के सहारे बाला के चिबुक को उठाते हुए कहा—'बाला!'—उसका गला भर आया। अपनी स्त्री के गले की ओर ध्यान लगाकर देखते हुए चुप रहा।

रामनाथ के नेत्रों के मूक भावों को बाला ताड़ गई। उसे स्पष्ट रूप से ज्ञात हुआ कि मेरा यह मंगल-सूत्र ही मेरे पति को जुए के प्रति घृणा पैदा किये बिना बंधन-सा रह गया है। उसकी हृदत्तंत्रियाँ झन-झनाती हुई मानो कह रही थीं कि तुम उसका भी त्याग कर दो।

बाला तुरंत वहाँ से उठकर अंदर गई। एक धागे को हलदी का रंग लगाकर उसके बीच सिंदूर-कणिका बाँध लाई। उसे अपने प्रभु के हाथ में देती हुई बोली - नाथ! यह मेरे गले में बाँधकर वह ले जाइये।

जिन हाथों ने बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद लेते हुए बाला के गले में मंगल-सूत्र बाँधा था, आज वे ही हाथ जुए की तीव्र लालसा के कारण उसी मंगल-सूत्र की गाँठ खोलने के लिए उतावले होते हुए लज्जा तथा नीचता का अनुभव करने लगे। पर ताश की बुरी लत उसे अपनी उँगली के इशारे पर नचा रही थी। अन्त में रामनाथ चौखट पार कर गया।

अपने गले से सब गहने देते समय भी बाला के सुन्दर मुख पर दुःख की रेखा तक दिखाई नहीं दी। पर आज उसे दुःख से पराजित होना पड़ा। उसका तकिया रात भर आँसुओं से भींग गया। अत्यन्त वैभव-पूर्ण विवाह-महोत्सव के अवसर पर विवाह-मण्डप में जब वह अपने भविष्य जीवन की सुमधुर भावनाओं को हृदय में रख कर बैठी थी—

लाज के मारे गुलाब के समान उसके गालों पर लाली दौड़ आई थी, उसके पति ने अपने हाथों से उसके गले में तीन बार गाँठ देकर जो पवित्र मंगल-सूत्र बाँध दिया था, और इतने दिनों से वह हलदी और कुंकुम के साथ जिसकी पूजा करती आ रही थी, आज वह पवित्र प्रतीक कहाँ चली गई ? क्या, फिर उसे वह प्राप्त कर सकेगी ?—उसे पहनने का सौभाग्य प्राप्त होगा ?

पति की जायदाद, घर का सामान, अपने गहने—सब कुछ खो जाने पर भी वह कभी इतना अधीर नहीं हुई थी। केवल अपने शुभ चिन्ह के लोप से उसने उस रात न-जाने कितनी वेदना का अनुभव किया।

× × ×

पौ फटने लगी। अन्धकार के परदे एक के बाद एक टूटने लगे। क्लब में खेल खतम हुआ। रामनाथ घर आ रहा था।

उस रात के खेल में रामनाथ को अद्‌भुत विजय मिली। जीत में वैसी पूर्ण सफलता कभी नहीं मिली थी। उसने पहले ही खेल में मंगल-सूत्र की बाजी लगाई। उसे ही जय मिली। रात भर खेलते-खेलते वह सिर्फ चार पाँच बार हारा था। कोई भी यह कह नहीं सकता कि यह जादू मंगल-सूत्र में है, अथवा और किसी में।

अब वह करीब-करीब पच्चीस हज़ार नगद रुपयों के साथ घर आ रहा था। पहले ताश के खेल में उसने जो जायदाद गँवाई थी, उसकी सारी कीमत आज एक रात में आ गई।

पर रामनाथ के मुख पर प्रसन्नता दिखाई नहीं पड़ती थी। जुआ

में हारनेवालों के दुख से वह खूब परिचित था। उसे आज मालूम हुआ कि दूसरों के धन को जुए में जीतना मेरे जैसे मनुष्य के लिए खुशी की बात नहीं है। न्याय तथा पुरुषार्थ के बिना दुष्कर्मों से जो धन प्राप्त होता है, उसे लेते हुए किसका मन संकोच नहीं करता? आखिर यह धन क्या किया जाय?

पहले खेलने निकलते समय वह अपने मन को सँभाल न सका। विजय के बाद भी उसका मन प्रसन्न नहीं था। वह अपने मन की विचित्र दशा पर खुद ही चकित हो रहा था। जब विजय का आनन्द नहीं है, तो खेल का उसे इतना व्यसन किस लिए?

रात को जब रामनाथ खेलने गया था, तब बाला को दरवाज़ा बंद करने की सुध ही न थी। सवेरा होते ही रामनाथ ने दरवाज़ा ठेलकर अंदर प्रवेश किया। ईश्वर ही जाने कि तब तक बाला किस में विचर रही थी।

पति के पैरों की आहट सुनकर वह वहीं पलंग पर से कूदकर उसके घुटनों से लिपट गई। सिर उठाकर करुणा-भरे नेत्रों से देखती हुई बोली—नाथ! लाये—मेरा मंगल-सूत्र लाये?

बाला पहले कभी इस तरह विचलित नहीं हुई थी। रामनाथ को यह मालूम था। एक तो उसे रात भर नींद नहीं आई थी, दूसरे रो-रो कर उसकी आँखें चढ़ी हुई थीं। उसका वह रूप देखते हुए उसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो शोक की देवी ही सामने खड़ी है। रामनाथ के हृदय में करुणा का संचार होने लगा। उसकी आँखों के आँसू बाला के सीमंत पर टपकने लगे।

बाला के हृदय की सरलता, पवित्रता एवं निर्मल प्रेम ने रामनाथ को चारो ओर से घेरकर हराया था। पुस्तकों की पढ़ी हुई सूक्तियों और पिता के उपदेशों द्वारा, उसका जो हृदय परिवर्तित न हो सका, वह उस करुणामय सुअवसर ने पूरा कर दिखाया।

बाला अपने पति के लिए सब कुछ अर्पण कर उसे सतुष्ट रखने के लिये अनेकों कष्ट भी सहनेवाली धीर रमणी थी। रामनाथ तो ऐसा स्वार्थी था कि अपने दुर्व्यसन के अधीन होकर पत्नी का मंगल-सूत्र भी बाजी लगाने में आगा-पीछा नहीं कर सका। दोनों के बीच जो महान् अतर था, उसे पाकर रामनाथ ने अपने को बाला के समीप पाने की आवश्यकता जान ली थी।

उसने अपने पैरों के पास बैठी हुई बाला को धीरे से ऊपर उठाया। मगल-सूत्र जेब से निकालकर उसके गले में बाँध दिया। प्रातःकालीन सूर्य-किरणों के स्पर्श के समान बाला का मुख-पद्म विकसित हो उठा। मगल-सूत्र को श्रद्धा-भक्ति के साथ आँखों से लगा लिया।

× × ×

दूसरे दिन रामनाथ ने पिछले दिन की रात के खेल में हारे हुए मित्रों को बुलाकर अपना पैसा लौटा दिया। यही नहीं बल्कि उनसे ताश कभी न खेलने की सौगन्ध भी खिलाई। उसके इस आकस्मिक परिवर्तन पर गाँव के सब लोग फूले अग न समाये और बाला के पवित्र चरित्र को ही इसका कारण समझने लगे।

रामनाथ के पिता को असीम प्रसन्नता हुई। उसी दिन उन्होंने

अपनी बहू तथा बेटे को अपने यहाँ लाकर उत्सव मनाया। बाला ने अपनी सास की छाती को आनन्द अश्रु से भिगो दिया।

जैसा कि पहले रामनाथ के पिता ने सोचा था, उन्हें अब बाला के नाम पर जायदाद रखने की आवश्यकता ही न पड़ी।

పుణ్యాత్మా

బోడ్డు బాపిరాజు

[श्रीबोड्डु वापिराजू आधुनिक तेलुगू कहानी लेखकों में अपना एक अन्यतम स्थान रखते हैं। आपकी कहानियों की सरलता और मार्मिकता आपकी लोकप्रियता का रहस्य है।

'पुण्यात्मा' में कुछ स्थल बड़े मार्मिक हैं। भिखमंगों पर जो कटाक्ष लेखक ने किया है। वह बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। इस सीधी-सादी कहानी में भी लेखक ने ये जो कुछ स्थल उपस्थित किये हैं, उनका महत्व है। अंत बड़ा ही सुन्दर हुआ है। 'पुण्यात्मा' होने का प्रसाद लेखक ने इसी संसार में दिला दिया है। मृत्यु के पश्चात् का हाल कौन जाने!]

पुण्यात्मा

मन्दिर में बड़ी धूमधाम थी। आने-जानेवालों की भीड़ थी। कई लोग अपने परिचितों को सामने पाकर हँस-मुख चेहरों के साथ राह चलते थे। मन्दिर के अन्दर भजन और प्रार्थनाएँ गोदावरी नदी की गर्जना के साथ स्पर्धा करती थीं। मैं अन्दर गया। दम घुटता था। बाहर आकर चबूतरे पर जा बैठा। मेरी समझ में न आया कि लोग ऐसी भारी भीड़ में कौन-सा पुण्य कमाने जाते हैं।

गोदावरी की लहरों पर से ठण्डी हवा चल रही थी। पास के मार्कण्डेय मन्दिर से रह-रहकर घण्टे का नाद सुन पड़ता था। दूर के पुल पर से अजगर के समान कोई माल-गाड़ी जा रही थी। आकाश में सन्ध्या की रक्त-वर्ण-लालिमा अभी नहीं मिटी थी। 'डरोती' जहाज वहाँ से चलने की तैयारी में था। उस मेले से किसी तरह का सम्बन्ध रक्खे बिना मैं इस सुन्दर दृश्य का निरीक्षण कर रहा था।

कुछ समय के बाद मेरी आँखें लोगों की भीड़ पर दौड़ीं। उनमें अधिक संख्या विधवाओं की थी। पति के सुख से वंचित रहने के कारण उन्हें मोक्ष की चाह थी। उनमें सूद का व्यापार करनेवाले भी थे। वे अमीर थे। गरीबों का खून चूसकर, उनकी तोंदों ने जो पाप भरा था, उसे कम करना चाहते थे। जिन अधिकारियों ने मदान्धता से किसानों और मज़दूरों को सताकर पाप जमा किया था, उसे धोने के लिए वे व्यग्र दिखाई देते थे। इस समय सब आस्तिक थे। सब सनातनी थे। वाह! देश किस तरह के भक्ति-भाव से भरा है। अगर उनकी पूजा तथा भक्ति सच्ची होती तो क्या ईश्वर यों चुप बैठ सकता था? अगर इनकी आत्माओं का वास्तविक रूप चित्रण करनेवाला यन्त्र होता तो पाप का घड़ा फूटे बिना रह सकता था?

मेरी दृष्टि उनकी ओर से दूसरी ओर फिरी। चबूतरों के नीचे कुछ दूर पर एक सड़क थी। वहाँ भिखमंगे बैठे हुए थे—खाने और पहनने के लिए तरसनेवाले। वे कगाल ग़रीबी के लिए सरहद से मालूम होते दे। सामने एक चिथड़ा बिछाकर भाग्य-देवता की उपासना कर रहे थे। अगर कोई उन्हें पैसे अथवा फल देता तो वे उसी पर खुश होकर

दाता को हजारों धन्यवाद देते थे। पानी की एक-एक बूँद की भाँति न मालूम कितनी दमड़ियों के मेल से, भूख की आग से पीड़ित उन गरीबों को पेट भर भोजन मिलेगा? उनकी खबर लेनेवाला है कौन? आज के दिन मंदिर में लोगों का दान-धर्म भगवान के लिए प्रतिनिधि स्वरूप पुजारी महाशय का ही था। मूक ईश्वर के लिए केले, नारियल, आदि भेंट चढ़ाये जाते थे। पता नहीं उनकी पहुँच भगवान तक होगी कि नहीं? बेचारे ये भिखमंगे दाताओं से कुछ पूछें भी तो इन्हें गालियों तथा झिड़कियों के सिवा और प्राप्त ही क्या होगा?

उसी कतार में—ठीक मेरे सामने एक अंधा भिखारी बैठा था। करीब-करीब वह जीवन के संध्याकाल में पहुँच चुका था। उसके नेत्रों के लिए यह विशाल विश्व अनंत अंधकार के समान था। सच पूछो तो वास्तव में यह जगत ही अंधकारमय है। संसार की यह मोहमयी रोशनी, अंतर्जगत का अध्ययन करनेवाले उन ज्ञान-चक्षुओं को मोहित नहीं कर सकी। कौन जाने कि सिकुड़े हुए ललाट के उस गीलेपन में कितने सुकृतों ने स्नान किया था? कितना भाग्य गल गया था? उसने भी अपने सामने एक गंदा कपड़ा बिछाया था। उसके बगल में दस वर्ष की एक बालिका थी। दरिद्रता के लिए वह आग की चिनगारी के समान थी। उस बूढ़े के नज़दीक ही एक लड़की थी। संसार की दृष्टि में वह बूढ़ा बिल्कुल नाचीज़ था। पर उस लड़की का रक्षक था—उस लड़की का मालिक था। उस बिछे हुए चिथड़े को ही रोज उसका पेट भरना था। यों ही चिथड़ा बिछाकर बैठे रहने से क्या पेट भरता था? उसके साथ-साथ जोर से चिल्लाते हुए गला भी तो फाड़ना था:

'सिर्फ़ एक पैसा दो बाबू !
आँखें फूट गइ हैं बाबू !
हम पर तरस खाओ ऐ बाबू !
मरते दम तक भूलें न बाबू !

पद में राग नहीं था। ताल भी नहीं था। वह एक मामूली पद था। वह कवि, लाक्षणिक अथवा वैयाकरण भी नहीं था। वहाँ के मनुष्यों के हृदयों को द्रवीभूत कर उनके सहारे रोटी खानेवाला अधा भिखारी था। कंजूस तथा स्वार्थी लोग उसकी छाया को देखकर घबड़ाते थे। जिनके हृदय में करुणा का वास था, वे यथाशक्ति कुछ न कुछ दे ही जाते थे। वह किसी पर ज़बर्दस्ती तो नहीं करता था। अदालत का गुमाश्ता नहीं था कि मुद्दई-मुद्दालेह से झूठ-मूठ कहकर बलात् उसका पीछा करे। इनकम-टैक्स (आयकर) का अफ़सर नहीं था कि व्यापारियों के गले पर जा बैठे। आखिर 'बीट कानस्टेबुल' भी नहीं था कि लोगों पर अपनी हुकूमत करे।—संसार की दृष्टि में उस बूढ़े का कुछ भी मूल्य नहीं था। बिलकुल घृणित जीव था। दाताओं को कृतज्ञता प्रकट किये बिना रह नहीं सकता था।—शायद—बेचारी उस लड़की ने भी अपने भावी जीवन के लिए यही मार्ग स्थिर किया था। दादा के कण्ठ से अपना मधुर कण्ठ मिलाकर वह भी धीरे-धीरे गाने लगी।

'सिर्फ एक पैसा दो बाबू !
आँखें फूट गइ हैं बाबू !
हम पर तरस खाओ ऐ बाबू !
मरते दम तक भूलें न बाबू !'

वह गाती हुई हाथ फैलाती थी। उस लड़की को देखने पर मेरी गीली आँखों में हल्की चाँदनी का आभास उदित हुआ। पककर झड़ने के लिए तैय्यार, वह पीले रंग का पत्ता— उसके नीचे अभी उगने-वाला नव पल्लव। सूखा, मुरझाया हुआ पतनोन्मुख वह पुष्प,—उसके चारों ओर अधखिले दलों से पत्तों की आड़ में छिपी हुई छोटी-सी कलिका। पश्चिमाम्बुधि में रक्त-वर्ण के साथ-साथ अदृश्य होनेवाली अंतिम सूर्य-किरण – ठीक उसके सामने मेघ-पटों को हटाती हुई आने-वाली हलकी तारिका। उस पल्लव को यौवन में प्रवेश करते हुए देखने का सौभाग्य उस झड़नेवाले पीले पत्ते को नहीं था। इस कली की पंखुड़ियाँ खुलते ही देखकर प्रसन्न रहने का भाग्य भी उस मुरझाये हुए सुमन के लिए नहीं था। इस नक्षत्र के सुन्दर प्रकाश को वह अंतिम किरण देख नहीं सकती थी।

कितने ही भक्त उस राह से होकर गुज़रे थे। कितने ही महात्मा, उस मार्ग से लौटते थे। पर उन लोगों में किसी को इस भिखारी का बिल्ला हुआ चिथड़ा देखने में अच्छा नहीं लगता था। देवालय के गर्भ में सड़नेवाले केले और नारियल उस गरीब की भूख नहीं मिटा सके। सब लोगों की दृष्टि मंदिर के ईश्वर पर ही थी।

पास ही एक मुसलमान खिलौने और बच्चों को मोहित करनेवाले छोटे-छोटे बाजे बेच रहा था। बच्चे के साथ आनेवाली कोई भी माता अपने बच्चे के लिए पैसा देकर बाजा खरीदे बिना वहाँ से नहीं टल सकती थी। कुछ शरारती लड़के बूढ़ियों के मना करने पर भी उन्हें सताकर खरीदवाते थे। बच्चे ही नहीं—जो अब भी बचपन के खेलों से

बाज नहीं आये थे, वे भी खरीदकर अपने लड़कपन का शौक प्रकट करते थे। कुछ दूरदर्शी सज्जन घरके बच्चों के लिए खरीद ले चलते थे। एक अमीर का लड़का दोनो हाथों में दो बाजे लेकर झूमते हुए जा रहा था।

दादा के बगल में खड़ी हुई उस लड़की ने चमकीली आँखों से यह दृश्य देखा। सुख-दुःख से अपरिचित उस भोली लड़की के मन में एक बाजा खरीदने की इच्छा पैदा हुई। दादा से पूछना चाहा। फिर कुछ सोचकर पीछे हटी। अंधे भिखारी को मालूम हुए बिना वह खरीद सकती थी—मगर अब तक उसके सरल तथा पवित्र हृदय में ऐसी कुप्रवृत्ति का—बुरे विचारों का प्रवेश नहीं हुआ था। देखते-देखते बहुत-से लड़के बाजे खरीदने लगे और कुछ देर बाद उस खिलौनेवाले के पास बहुत कम बचे थे। यह देखने पर उस लड़की की उत्सुकता और भी बढ़ने लगी। एक बाजा तीन दमड़ियों के मूल्य के बराबर था। तीन पुण्यात्माओं के फल का एक-रूप था। चारो ओर लाल काग़ज़ था। 'हम-हम' करती हुई कर्ण-मधुर ध्वनि थी। अब वह अपने मन को न रोक सकी। सकुचाती हुई दादा से बोली—'दादा! क्या मैं भी एक बाजा खरीद लूँ?

बालिका के इस सरल प्रश्न पर बूढ़े के सूखे होठों में मन्द मुसकान दौड़ आई। अमावस्या के गहन अन्धकार में वह बिजली एक चमक थी। तब तक उसने गला फाड़-फाड़कर जो जमा किया था, वह कुल आठ दमड़ियाँ थीं। उसमें से क्या वह अपनी पोती के लिए एक पैसा खर्च नहीं कर सकता था? उसकी आँखें सजल हो गईं बोला—'बेटी इसे ही खरीद लो।'

उस छोटी लड़की ने दादा के आँसू देखकर न मालूम अपने मन में क्या समझा—और उसके विचारों की तरह तक कैसे पहुँची—झट कह उठी—नहीं दादा ! ज़रूरत नहीं—यों ही माँगा था। उस बालिका को दादा के आँसुओं ने कितना संयम सिखाया था। उसने कितना अनुभव प्राप्त किया !

दादा उसके हाथ में पैसा देते हुए बोला—'बेटी ! खरीदो। यह लो पैसा।' पर लड़की ने नहीं लिया। बोली—नहीं दादा ! वह बड़े लोगों के लिये है।

दादा की अन्तरात्मा से भी प्रतिध्वनि निकली—ठीक है बेटी ! वह पैसेवालों के लिये है।

× × ×

वह पहले एक प्रतिष्ठित आदमी था। हज़ारों की आमदनी थी। कुछ पढ़ा-लिखा भी था। बाल-बच्चों के साथ सुख से दिन काटता था। गरीबों पर उसकी अपार करुणा थी। उनकी आँखों से आँसू बहते हुए देख नहीं सकता था। कितने ही अनाथों को उसने शरण दी थी। भूख की ज्वाला से पीड़ित मज़दूरों तथा दाने-दाने के लिए तरसनेवाले गरीबों का वह एकमात्र सहारा था। अमीरों को देखने पर तो उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलती थीं। हृदय-शून्य होकर गरीबों पर धनवान जो अत्याचार करते थे, जान पर खेलकर भी वह उनका सामना करता था। श्रमजीवियों के अधिकार प्राप्त करने के लिए वह दिन-रात मेहनत करता रहता था। इसी से धनवान उससे जलते

थे। अधिकारियों का उस पर द्वेष था। उसके एक लड़का था। धनवान बूढ़े को अपने वश में रखना चाहते थे। फल-स्वरूप उन्होंने गुप्त रूप से लड़के की जान ली। इस दुर्घटना से मानो उसकी रीढ़ टूट गयी। लड़के के बदले उसका एक स्मृति-चिह्न रह गया था— छोटे पौधे के समान उस एक महीने की बच्ची का। वह उसका जान से भी बढ़कर पालन-पोषण करता था। अमीरों की जालसाजी के कारण उसकी सारी संपत्ति नष्ट हुई थी। वह भी खाने और पहनने के लिए तरसने लगा। इसी मनोव्याधि से उसकी स्त्री का देहांत भी हुआ। बहू तो चेचक (बीमारी) का शिकार हो गई थी। बस, अब इस दुनिया में उसके लिए वही एक छोटी बच्ची थी। वही उसके जीवन की लकड़ी थी। उस दरिद्रता में भी उस बूढ़े ने जैसे-तैसे छः साल तक उसे पाला-पोसा। इतने में अचानक किसी बीमारी के कारण उसकी दोनो आँखें चली गईं। तब से यही लड़की उसकी दुनिया थी।

× × ×

मैं वहीं पर बैठे बैठे कल्पना के पंखों पर उड़कर सोच रहा था कि अगर इस लड़की का भावी जीवन सुखमय हो तो कितना अच्छा हो। लोगों की भीड़ कम हो गई। धीरे-धीरे अन्धकार का आगमन हुआ। मेरा मन घर की ओर मचलने लगा। भिखारी भी वहाँ से उठकर चलने लगा। बालिका लड़की के सहारे उसे आगे-आगे लेकर चलती थी। उसके पीछे बूढ़ा चलता था। उन दोनो के पीछे मैं। उन्होंने उस दिन के कुल पैसे गिने। तो १३ (तेरह) दमड़ियाँ थीं। लड़की ने दीन स्वर से कहा—दादा! आज सिर्फ १३ दमड़ियाँ ही

मिली हैं। कितने ही बाबू लोग आये हैं। मगर हमारा मुँह भी नहीं देखा।

दादा ने कहा—बेटी ऐसी बात मत कहो। वे ही पुण्यात्मा हैं।

मैं ने अपने मन से प्रश्न किया -- क्या ! सचमुच वे ही पुण्यात्मा हैं ?

दादा और लड़की दोनो बातचीत करते हुए जा रहे थे। दादा ने सारे विश्व को छानकर सार निकाला था। पर वह लड़की सूर्य-किरण से भी अपरिचित रहकर पत्तों की ओट में छिपी हुई कलिका के समान थी।

उन दोनों को देखते ही न जाने क्यों मेरे हृदय में करुणा-रस का संचार हुआ। सोचा, दिन-भर के भूखे इन बेचारों के पेट इन्हीं तेरह दमिड़ियों से तृप्त होंगे ? फिर कल के लिए भी बचेगा कि नहीं ! मैं तो रोज़ कम से कम दो आने सिगरेट और पान के लिए खर्च करता हूँ ! उसकी असहायता और मेरा अलक्ष्य देखने पर मुझे बिच्छू के डंक के समान दर्द मालूम हुआ। ऐसे लोग न मालूम एक-एक शहर में कितने रहते हैं !

सब मिलकर सड़क की एक लालटेन के पास आये। मैंने उस लड़की को बुलाया। उसने बड़ी ही आशा से मेरे सामने आकर हाथ फैलाया। मैंने जेब से निकालकर उसके हाथ में कुछ रखा। यह देखकर लड़की विचलित हुई। कुछ देर तक मेरी ओर—बाद अपने हाथ की ओर देखती हुई बोली—बाबू ! यह पैसा नहीं है—अठन्नी है।

मैंने हँसते हुए सिर हिलाकर कहा—हाँ, मुझे मालूम है ले लो। एक बाजा भी खरीद सकती हो। लड़की ने शरम के मारे सिर झुका

लिया। पास ही दादा खड़ा हुआ यह सब सुन कर बोला—जियो बेटा, ईश्वर तेरा ही जैसा पुत्र पैदा करे। उसकी आँखों से आनन्द प्रवाहित होता था।

घर आया तो तार मिला—

सुशीला के बच्चा हुआ। दोनों सकुशल हैं। रवाना हो जाओ।

बोधिर की तराई

अड़िवि बापिराजु

[तैलुगु-कथा-साहित्य में अड्डिवि बापिराजु का भावात्मक कहानियाँ लिखने में विशेष स्थान है। आपकी कहानियों में कवित्व-पूर्ण वर्णन-शैली, मानव-हृदय के सूक्ष्म भावों का उद्घाटन और सौन्दर्यानुभूति का समावेश उल्लेखनीय है। आपकी कहानियों से आपकी प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। तैलुगु साहित्य को आपसे बड़ी आशाएँ हैं।

'बोधिर की तराई' आपकी कला का बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है। कहानी का कथानक बौद्ध-युग से सम्बन्धित है। मानव-प्रकृति का चित्रण जिस खूबी से आपने खींचा है, वह निस्सन्देह अत्यन्त सुन्दर और उत्कृष्ट है।]

बोघिर की तराई ?

मैं उस घाटी में तेजी से प्रवेश कर गई जैसे पैरों से कुचला हुआ साँप दौड़ता है।

हर एक मोड़ में प्रकृति-सौन्दर्य गम्भीर रसानुभूति में डुबाने लगा जैसे किसी महाकाव्य के पृष्ठ उलट रहे हों।

चार मोड़ हैं। एक-एक मोड़ में तीन सौ धनुपाकार मोड़ हैं। अर्ध चन्द्र आकार में वे ऐसे दीखते हैं कि उनका अन्त यहीं हो गया

हो, उन मोड़ों के दोनों ओर नदी-देवता की जमा की हुई काली चट्टानें हैं। झाड़ियों से भरी तराइयाँ हैं। अजन्ता की गुफायें 'वोधिर' नदी के किनारे ही हैं। उनके ऊपर नीलम के शिखर हैं। काले जंगली भैसों की तरह पड़ी हुई काली चट्टानों से होकर भोगीर नदी जिसकी तीस तीरों के परिमाण की चौड़ाई है, संगीत में मस्त होकर बह रही है।

अर्जुन वृक्ष, पारिजात-वन, जगली चमेलियाँ, महुए के पेड़, तमाल-वृक्ष, बेर आदि से तराइयाँ भरी हुई हैं।

भिक्खुओं के मन्त्र-स्तवन, अलियों के गुंजन, चिड़ियों के कलकूजन से मिलकर दूर से घंटियों के बजने की आवाज़ आ रही थी।

मैं उस घाटी में प्रवेश कर गई, जैसे कोई मृगी विहार करने आई हो। बाकी लोग जो मेरे साथ थे, बहुत धीरे-धीरे पीछे आ रहे थे। 'बेटी, अकेले आगे न बढ़ो'—माताजी की आवाज़ कहीं दूर से आकर मेरे कानों में पड़ी। एक मोड़ पार किया। अहा! कैसा दिव्य-दर्शन!

वोधिर उत्तर की तरफ़ बहती है जिससे बीस-पचीस हाथ की ऊँचाई पर अर्ध-चन्द्राकार के रूप में बड़ी मनोहर गुफ़ाएँ और विहार के मैदान हैं। दूर से एक सुन्दर शिल्प-मालिका आँखों में इन्द्रधनुष का रूप पैदा करने लगी। खंभों की शिल्प-चातुरी, चित्र-कौशल, मूर्तियों के लावण्य की मूर्तिमत्ता, भिक्खु-जाति का काश्मीर कुसुम-वर्ण-विकास, विद्यार्थियों के शरीर की गोराई का कलधौत विलास, कई वर्णवाले नागरिकों और देहातियों की विनीत विचित्रता, अहा! एक कमनीय चित्र आँखों में झूल उठा।

आँखें बंद कर तथागत का ध्यान किया। वोधिर आश्रम के बगीचे

को—जिसमें महा-परिषद लोग विहार करते हैं, मन ही मन प्रणाम किया।

कुछ लोग पानी के लिए नदी में उतर रहे थे, कुछ लोग रंग-बिरंगे कलशों को कंधो पर सजाकर सीढ़ियाँ चढ़ते थे। स्त्री-पुरुष, बालक, बालिकाएँ, भिक्खु सभी। इन सब को देखकर भावोद्रेक में मेरा हृदय कभी नाच उठता, और कभी भाव-विहीन हृदय से चेतना-रहित हो जाता। इस तरह का हृदय लेकर मैं वहाँ खड़ी हो गई। मैंने देखा नहीं था कि ऊपर से कुछ विद्यार्थी और कुछ भिक्षुक मेरी तरफ़ टक-टकी लगाये देख रहे हैं। उस प्रथम दर्शन का मुहूर्त बड़ा ही रम्य और पावन था। उस पवित्र प्रदेश में कदम रखकर मैंने अपश्रुति का राग तो नहीं अलापा? एक तरह की लाज न जाने क्या—मेरे ऊपर छा गई।

हमारे गुरुदेव शिल्पाचार्य हैं। वे हिमालय-शिखर की तरह तेजस्वी हैं। वे बोलते कम हैं। जो चार वाक्य वे कहते हैं, वे मन्त्र-सूक्तियों की भाँति सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

बचपन से ही चित्र-लेखन आदि ललित कलाओं को अपनी सहेलियाँ बनाकर उन्हीं के साथ मुझे खेलते देखकर, इस उत्कृष्ट विद्या में पारंगत करने की इच्छा से मालव देश के महाराज मेरे पिताजी, तथा उनके महा मन्त्री आनन्दवसु ने एक पवित्र मुहूर्त में मुझे इस आश्रम में भेज दिया। पिताजी हम से पहले ही यहाँ पहुँचे और उन्होंने पहले ही से बने हुए गुफ़ा—चैत्य को सजाने की आज्ञा दी। सजावट पूरी होते ही, पिताजी का इरादा था, बड़े महोत्सव के साथ मुझे उस आश्रम के आचार्य के सुपुर्द करें।

उस गुफा-चत्य के आँगन का मंडप पूरा हो गया। खम्भे, शिल्प, मूर्तियाँ, भिक्षुओं के रहने के वास्ते भीतरी कमरे, शिलातल्प, दरवाजों पर नक्काशी, तथागत की गंभीर शिल्प-मूर्ति, आसन, छत्र, तोरण, और धर्मचक्र वगैरह सब तैयार हो गये। शिल्प-कला, चित्र-लेखन सीखने दूर-दूर देशों से जो छात्र आये हुए थे, वे और कारीगर चित्र-लेखन की सजावट में लगे हुए थे।

महाशिल्पी, चित्र-भवन-निर्माण-कुशल हमारे गुरुजी अपने शिष्य-वृन्द के साथ समूचे मध्य-मण्डप में जातक-कथाएँ अलकार-चित्र अकित करने लगे।

किसी जगह चित्र खींचकर एक शिष्य गुरुजी को दिखाने आया है। गुरुजी आवश्यक सुधार की बातें समझाकर दूसरी जगह पहुँच गये हैं। रंग भरकर और एक छात्र सामने आ गया है। गुरुजी रगवाली दावात में कूची डुबोकर चित्र की गल्तियाँ सुधारते हैं। गुरुजी स्वयं ही रूप-कल्पना कर चार-पाँच शिष्यों के द्वारा रंग भरवा रहे हैं। चित्र कल्पना, रूप-सृष्टि, रंग-भराई, यह सारी कारीगरी खुद गुरुजी ही आवश्यक स्थलों पर पूरा कर, अत्यद्भुद भावात्मक। कलाविदग्धता प्रत्यक्ष करते हैं। वह मनोहर दृश्यावली निहारकर मेरा हृदय आनंद से नाच उठा। आँखें अधखुली रह गईं; मेरा यौवन उमड़कर दसों दिशाओं में छा गया। मेरी उँगलियाँ अपने में सृष्टि का अभाव पाकर, कल्पना की योगनिष्ठा की ओर उन्मुख हो उठीं।

आज्ञा के वास्ते गुरुदेव के पास जाकर मैंने घुटने टेक दिये।

(२)

कोई लड़की मेरे सामने घुटने टेके बैठी है। उसकी परछाँही से ही मेरी आँखें बंद हो गईं।

'यह कौन हैं ?'

उसके साथ जो बूढ़ी आई, वह—

'स्वामिन्, यह आनंदवसु की एक मात्र लड़की है। बचपन से चित्र-लेखन कौशल का अच्छा अभ्यास किया है। फिर भी योग्य गुरु के अभाव में यह अपनी विद्या की तरक्की न कर सकी। जैन देव के धर्म-प्रचार की तरह, आपके यश को सारे संसार में फैलते देखकर, आपके चरणों का शुश्रूषा करने यहाँ आई है। आनंदवसु और हम सब की प्रार्थना है कि आप ऐसी दीक्षा दें कि ये चित्रकला के द्वारा निर्वाण- मार्ग का अन्वेषण कर सकें।'

अरे, कौन हैं वहाँ ? इन शैतानों को यहाँ आने दिया किसने ? सुनते हो कि नहीं ?'—ज़ोर से चिल्ला उठा।

तब उस बुड्ढी ने कहा—चलो, बेटी ! अब हम चले जायँ'—मैं झटके के साथ उठकर, गुनगुनाता हुआ बाहर चला गया। वांधिराश्रम के संघाचार्य सत्यशील भिक्षाचार्य के पास पहुँचा। सत्य-शीलाचार्य सौ बरस के वृद्ध हैं। सर्वशास्त्र-पारंगत हैं। संयम शक्ति-सम्पन्न उस महर्षि ने मुझे कुशासन पर बिठा कर सवाल किया—बेटा, यह क्या ? इस तरह बेज़ार होकर आ रहे हो ?

पवित्र मूर्ति उस आचार्य के चरणों में प्रणाम कर—'एक बड़ा भयानक विषय आपसे निवेदन करना चाहता हूँ। मैं जब पहली बार

इस आश्रम में पहुँचा, तब मैंने अपने जीवन के कुछ सिद्धांत आपके सामने उपस्थित किये थे और आपकी आज्ञा पाकर, परमश्रमण का दी हुई इस छोटी कला के द्वारा संघ और लोक की कुछ सेवा करने की अभिलाषा से इस संघाराम में पहुँचा'—मैंने निवेदन किया।

'हाँ, बेटा ! उन सिद्धांतों के पालन में क्या आघात पहुँचा ?'

'स्वामिन्, आज एक लड़की आई थी, जो प्रार्थना करती थी कि मैं उसको चित्र-कला सिखाऊँ !'

'मालव महामंत्री आनन्दवसु अपनी निरीह पुत्री को कलाएँ सिखाने के इरादे से, तथागत के पैरों का आश्रय चाहते हैं,' बेटा !'

'यह तो मेरे नियम के विरुद्ध है, देव !'

'मैंने कभी जानने का प्रयत्न नहीं किया कि तुम्हारे इस कठोर नियम का कारण क्या है। तुम से भी कभी नहीं पूछा। स्त्री ऐसा कौन काम करती है बेटा ? जो उसकी छाया से ही भागने की चेष्टा की जाय ? स्त्री का जन्म इसलिए हुआ कि वह पुरुष की भीतरी शक्ति को उद्भासित करने में मदद दे और पुरुष का भी जन्म इसलिए हुआ कि स्त्री उसकी सहायता से अपनी पवित्र शक्ति को प्रकाश में ला सके। महात्मा नागार्जुनाचार्य का उपदेश यही है तथागत का भी पवित्र धर्म यही है !'

'तब देव ! भिक्षुक और भिक्षुणी की ये दीक्षाएँ किस लिए ?'

'यही तुम्हारी भूल है, बेटा ? बिना दीक्षा के निर्वाण-पथ कैसे खोज सकते हो ? ससार से दूर रहकर ही, इस ससार से अतीत धर्म का अन्वेषण हो सकता है। उस दीक्षा और उस तपस्या में स्त्री और

पुरुष को बीच का आकर्षण बाधक नहीं होना चाहिये। स्त्री पर पुरुष और पुरुष पर स्त्री की जो आसक्ति है वह दूर हो जानी चाहिये। तब तक दुनिया के भीतर रहकर, जीव-प्रेम और धर्म-मार्ग के प्रति आसक्ति रखकर, अन्त में निर्वाण का अधिकार प्राप्त करना चाहिये।'

'प्रभु ! नागर्जुनाचार्य जिस पवित्र संघाराम में रहते थे, वह कृष्णा नदी के किनारे श्री पर्वतपुर के पास है।'

'हाँ, धान्यकटकनगर से कुछ आगे।'

'वहाँ एक युवक शिल्पी जो आंध्र था, रहता था। वह संख्यायन गोत्र का था और इक्ष्वाकु महाप्रभु का दरबारी शिल्पी था।

'बौद्ध धर्म की उसने दीक्षा ली थी ?

'वह बुद्धदेव को विष्णु का नवाँ अवतार माननेवालों में से था। वह शिल्पकला के द्वारा मोक्ष-पद पाना चाहता था।

'बुद्ध का अवतार ही परमावतार है। विष्णु का अवतार उनके पूर्व अवतारों में एक है।

'वसंत के फूलों का सौरभ, नीलाकाश मंथर गति से चलनेवाले जलधरों के किनारे, मन्द पवन में पैदा होकर लघु-लहरों पर चमकने-वाली चन्द्र-किरणों, झरनों के उड़नेवाले जलबिन्दु, इंद्र-धनुष की मनोरम रेखाएँ, मृगछौनों के सुन्दर चेहरे, सुन्दरियों के अपांग-वीक्षण—ये सभी उस शिल्पी को महामहिमामयी रूप-कल्पनाओं में डुबोतीं जिससे वह उस श्वेत तारा देवी के पैरों में झुक जाता।'

'इस नश्वर सौंदर्य की ही उसने आराधना की थी ?'

'प्रभु ! उस संघाराम में, राज-प्रासादों में उसने अपने शिष्यों सहित

जिन शिल्पों, चित्र-लेखनों, भवनों और स्तूपों की सृष्टि की है, वे बड़े ही मनोहर प्रमाणित हुए।'

'तब वह परमदेव महाश्रमण का बड़ा भक्त था!'

'जी हाँ, उसने एक इक्ष्वाकु राजकुमारी के साथ प्रेम किया। उस राजकुमारी ने भी अभिनय किया कि वह भी उस दिव्य-प्रेम का आह्वान करती है।'

'प्रेम नहीं किया?'

'स्वामिन्! उस कुमारी का हृदय उस रंग-बिरंगे मेघ की तरह था जिसका बाहरी रूप बड़ा ही आकर्षक हो और भीतर शून्यता ही शून्यता छाई हो। उस शिल्पी का प्रेम सतह से उठ कर महानता में परिणत हुआ। उस राजकुमारी ने भी अभिनय किया कि वह भी प्रेम-पथ पर उस शिल्पी से आगे बढ़ी है और उसे प्रेम के पारावार में डुबो रही है।'

'उस पगली ने ऐसा क्यों किया?'

स्वामिन्! स्त्री-हृदय की थाह लेना कैसा? शिल्पी ने उसके पिता से पाणि-ग्रहण की याचना की। पिता ने बड़ी खुशी से आज्ञा दी। लेकिन कपट-नाटक में प्रवीण, कर्कश हृदया उस कुमारी ने—'मैं कहाँ और वह शिल्पी कहाँ? उसके साथ मेरा विवाह!' कहकर हँस दिया। शिल्पी के हृदय पर अंधकार फैल गया। भयङ्कर तूफान के बादल छा गये। दावानल के धुएँ ने उसके जीवन पर घना आवरण डाला। उसके लिए भगवान नहीं, बुद्ध नहीं, धर्म नहीं, प्रेम नहीं इस संसार में कुछ नहीं छोड़ा।'

'कैसा वह बावला बना!'

'वह बावला नहीं, स्वामिन् ! वह पागल हो गया। उसका सारा ज्ञान लुप्त हो गया। उसके जीवन का दुर्भर विषाद ऐसा भयंकर हो उठा मानो हलाहल बनकर समस्त भुवनों को जला देगा। सभी देश-विदेशों में घूम-भटककर आख़िर वह इस आश्रम में पहुँच गया है।'

'अरे पागल ! इतनी बड़ी तुम्हारी विषाद-गाथा है ? इसीलिए स्त्री-ससार पर तुम्हारा यह क्रोध है ?'

'क्रोध नहीं, भय है भगवन् ! आपके चरणों में आकर कुछ तसल्ली पाई है। मैंने दीक्षा ली कि जगद्गुरु परमश्रमण के अवतार आपको अपनी सेवाएँ समर्पित कर, भौतिक वासनाओं से दूर रहकर निर्वाण-पथ का संधान करूँगा। मैंने अपने मनसूबे आपको बता दिये और उसके बाद ही इस शिल्प-कला में दीक्षित हुआ। निवेदन है कि विषाद-गाथा में डूबे हुए मुझे एक लड़की के गुरु बनने की आज्ञा देकर मोक्ष-पथ से अलग न करें।'

'बेटा, बुद्ध भगवान की परम कृपा से मैंने मानव-सेवा का अनन्य मार्ग पा लिया है। लोक के उद्धार में लगा हुआ मैं मानव-हृदय को अच्छी तरह पहचानता हूँ। तुम शिल्पकार हो, तुम्हारे हृदय से प्रेम लुप्त नहीं हो गया है। बल्कि किसी कोने में बहुत नीचे दबा हुआ है। तुम निर्वाण-पथ के अन्वेषण में लगे हो। इसलिए तुमको स्त्री-सम्बन्धी भय को बाहर निकाल फेंकना होगा। स्त्री, मायादेवी का अंश, प्रज्ञा परिमिता और श्वेत-तारा देवी है। इस बाला को चित्र-लेखन-कला सिखाकर अपनी तपस्या पूर्ण कर लो। इस बात का ख्याल रखो कि भय-पिशाच तुम्हारे दिल के टुकड़े-टुकड़े न कर दे।'

वेणुवन नामक उस महा चैत्य में सन्ध्या चारों ओर अपनी अरुण आभा फैला चुकी थी। हम एक घड़ी भर के लिए निश्चल होकर धान्यकटक में संगमरमर की बनी बुद्धदेव की मूर्ति की तरह बैठे रहे। मेरे हृदय पर जड़ता का आवरण पड़ गया। मेरी विचार-धारा उस लहर के समान हो गई जो बहुत दूर शत-शत योजन तक बह-बहकर अन्त में तट के पास तक पहुँची हो और तट से टकराकर छिन्न-भिन्न हो गई हो।

(३)

हमारे चित्रकलाचार्य श्री ज्योत्स्ना-प्रिय जी के जल्दी चले जाने के कारण मैं भी वहाँ ठहर न सकी। जल्दी भाग निकली। मेरा हृदय कच्चे बर्तन की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गया। दासियाँ सहारा दे रही थीं। माताजी उदास चेहरा लिये देख रही थीं। मैं बड़ी तेज़ी के साथ कदम रखती हुई मालव-महाराज की विहार गुफा में जाकर बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ी— जैसे खाट पर पति से तिरस्कृत उमादेवी की पुष्प-माला पड़ी हो।

जब मैं होश में आई तो सारा विहार अन्धकार-मय था। कहीं दो दिये खद्योतों की तरह कभी-कभी क्षीण प्रकाश कर उठते थे। उसी अन्धकार में से कई स्त्रियाँ और पुरुष मेरी ओर करुणा और हासभरे नयनों से निहार रहे थे। मेरी खाट के पास ही सत्यशील भिक्षाचार्य बहुत देर से खड़े थे। उनकी आँखें दया और वात्सल्य की अजस्र वर्षा कर रही थीं। उनके जरा-जर्जर ओठों में अमृत-मयी हँसी प्रस्फुटित हो रही थी।

नशा धीरे-धीरे उतर गया। अक्ल दुरुस्त हुई अपने को संभालकर

तुरंत उठ खड़ी हुई। पैर लड़खड़ाया तो एक बूढ़ी दाई सहारा देती उपदेश के स्वर में बोली—बेटी, आचार्य को नमस्कार करो।

उस वृद्ध आचार्य के चरणों में मैंने घुटने टेक दिये।

'बेटी, तुम्हारी इस दीक्षा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। क्यों बेटी, शिल्प के प्रति तुम्हारा इतना आकर्षण क्यों है?'

'स्वामिन!'

'जरा अपने को सँभाल लो बेटी! कोई जल्दी नहीं है।'

दाइयों के भक्ति-पूर्वक लाये हुए आसन पर वे वृद्ध शान्तमूर्ति भिक्षु आसीन हुए। उन्हीं के पास सिर झुकाकर मैं भी बैठ गई।

मेरे कंठ से एक स्पष्ट स्वर-लहरी प्रवाहित हो चली।

'स्वामिन! मैं जिस दिन चित्रकला का अभ्यास करना छोड़ दूँगी, मेरा जन्म बेकार हो जायगा। मेरी पूजाएँ निष्फल हो जायँगी। अब मैं इस चिरवांछित प्रगाढ़ अभिलाषा को धारण भी नहीं कर पाती हूँ और न निकाल फेंकने में ही समर्थ हो रही हूँ।'

'ऐसा क्यों बेटी! पगली कहीं की। क्या अब तुम्हें कोई दूसरा आचार्य ही न मिलेगा?'

मैं उठकर बैठ गई।

महाराज मैं सबों की चित्र-लेखन-कला परख चुकी हूँ। जिनके पास प्रखर-प्रतिभा नहीं है, उनके चरणों में रहकर कला का अभ्यास करना अपनी प्राप्त की हुई शक्तियों को भी खोना है। क्या नहीं?'

'हाँ बेटी।—मैंने शिल्पाचार्य ज्योत्स्ना-प्रिय को मना लिया है। वे तुमको अब शिक्षा देंगे। मगर उनकी कुछ शर्तें हैं।—जब वे मूर्ति

निर्माण कर रहे हो तो तुम्हें पीछे खड़ी होकर सीखना होगा।—सामने नहीं खड़ी हो सकती। उनकी अनुपस्थिति में ही दीवारों पर चित्र-लेखन का अभ्यास करना होगा। वे फुरसत के वक्त उसे ठीक कर दिया करेंगे। तुम अगर फलकों पर चित्र बनाकर नौकरों द्वारा उनके पास भेज दोगी तो वे उसको सुधार दिया करेंगे।'

'स्वामिन, चाहे जैसी शर्तें लगाकर भी वे मुझे चित्र-कला का प्रसाद दें—मेरे लिए वही यथेष्ट है। मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म तर जायगा।'

कुलपति सत्यशीलाचार्य बुढ़ापे में भी कान्ति से भरी हुई अपनी आँखों में हँसते हुए चले गये।

यह वर मुझे कैसे मिला! कैसी अपूर्व घटना है। फूल जिस प्रकार मधु को अपने में छिपाकर उसका सम्मान करता है, उसी प्रकार काश, मैं भी इस शिक्षा की पूजा कर सकूँ? तारों में स्वर और वसन्त में सौरभ की भाँति मेरे भी रोम-रोम में यह कला प्रसारित हो जाय।

(४)

शीघ्र ही शुभ-मुहूर्त ठीक कर वह बालिका विचित्र पद्धति से मेरे पास कला की दीक्षा लेकर अभ्यास करने लगी। उसका नाम 'कलहार माला' है। पुरुष बेचारे कितने सीधे सादे हैं कि इन गोमुख व्याघ्रिनियों के—इन मारण-पिशाचिनियों के ऐसे सुन्दर नाम देते हैं! मालूम नहीं कि जैन भगवान ने स्त्री-तत्त्व को लेकर दुनिया को क्यों इतना मलिन कर दिया! तथागत भगवान ने इस जंजाल से छूटने के लिए चालिस तपस्या की थी, मगर पता नहीं मुझे कितने दिन लगेंगे?

उस लड़की के चित्रों में एक खास प्रतिभा झलकती रहती है।

वर्ण (रंग) ज्ञान भी उसका उच्च है। रेखा-नैपुण्य कैसे प्राप्त कर लेती है ? यह बाला बड़ी सुन्दर रेखायें खींचती है। हाँ, एकाध गलती हो जाना स्वाभाविक है। मगर कई ऐसे विद्यार्थी हैं, जिन्हें इतने अभ्यास में कई बरस लग गये हैं फिर भी रेखाशक्ति प्राप्त नहीं कर पाये हैं। सुनता हूँ वह अपनी कूँची आप ही बना लेती है। यह ताज्जुब की बात है। अत्यन्त ललित सुकुमार उन अँगुलियों में ताकत तो नहीं होनी चाहिये। हो सकता है उस लड़की की अँगुलियाँ पुरुषों के सदृश हों या वह लड़की ही पुरुषों की तरह हो। जब वह बिजली की तरह मेरे सामने आ उतरी तो उस मूर्ति ने मानो इन्द्रजाल रच दिया मेरी आँखों के सामने। कैसी सुन्दरी है !—ओह, छिः—मैं स्त्री पिशाचिनी का रूप वर्णन क्यों करने लगा ?

उन दिनों तो उसके चित्रों को सुधारना मुझे बहुत ही हेय मालूम हुआ। मैंने जिन चित्रों की कल्पना अपने हृदय में की थी वह भीतर ही भीतर पच गई। मैं एक पुतली की तरह चित्र ठीक करके चला आता। मैं उस आदमी के समान कमजोर हो गया जिसको भीतरी बुख़ार धर दबाता है। क्रमशः हाथों को कँपकँपी की बीमारी हो गई—ऐसा महसूस होने लगा। अभी पैंतीसवा साल ही चल रहा था। मेरी सारी जवानी ढलती हुई नजर आने लगी। विद्यार्थियों को शिक्षा देना अपना अनिवार्य कर्तव्य ही बना रखा था। शेष समय अपनी गुफा के भीतरी कमरे में कठिन शिला-तल्प पर लेटकर बिताने लगा। कहीं बाहर विहार करने जाने की तबीयत और ताकत भी नहीं रही।

एक दिन 'कलहार माला' के चित्रों को सुधारने के बाद मालव-मंत्री

के यहाँ गया। वहाँ पर मेरी बनाई बोधिसत्त्व की मूर्ति थी। उस मूर्ति की बगल में एक युवती की मूर्ति मैंने देखी। किसने यह मूर्त्ति बनाई? और बनाई ही क्यों? बिना मेरी आज्ञा किस मूर्ख ने इतना साहस किया? वह मूर्ति मेरी ओर अप्रतिभ-सी होकर देख रही थी। साँसें भी चल रही हैं। ऐसा मालूम होता था। कुछ अजीब ढंग से वह खड़ी थी। बोधिसत्त्व की उस त्रिभंग-मूर्त्ति के पास इस सम-भंगाकृति की रचना करना तो बिल्कुल अनुचित है। गलत तरीका है। इतने में वह मूर्त्ति हिली और सिर झुकाकर हाथ जोड़ लिया। वह गढ़ी हुई मूर्त्ति नहीं थी। वह तो सजीव बाला थी। मेरा कलेजा धक् से रह गया, फिर सिकुड़ने लगा। अन्दर जोरों से मेरी की आवाज़ गूँजने लगी। मैं चेतना रहित होकर वहीं पर खड़ा रह गया।

उसका सौन्दर्य अलौकिक था। उसके चेहरे पर की निश्चलता, प्रतिभा, शान्ति, निर्मल और कोमल कांति किसी निगूढ़ सत्य की ओर इशारा कर रही थी। किसी स्त्री का मुँह न देखने की प्रतिज्ञा नदी के भँवर में पड़ विलीन हो गई।

'क्या तुम देव-बाला हो?'—मैंने आगे बढ़कर जल्दी से प्रश्न किया।

'प्रभु, मैं—कलहार माला हूँ मालव-मंत्री की बेटी—।'

'मेरी शिष्या हो? हा-हा-हा..।'

मैं विकट हँसी हँसता हुआ अचानक खड़ा हुआ और जल्दी-जल्दी जंगलों में चला गया। मेरे हृदय में अन्धकार और ज्योति से परे की कोई शून्यता आकर छा गई। मेरा शरीर काँप उठा। एक भयंकर आनन्द ने बड़ी जोरदार लहरों के साथ मुझे अपने अन्दर समेट

लिया। और भँवरों में घुमा-घुमाकर कहीं दूर गहराई में ले जाकर पटक दिया।

मैं भूल गया था कि उस जंगल में हिंस्र जंतु रहते हैं। मैं खुद ही एक निशाचर व्याध के समान उन पेड़ों की छाया में पड़ा रहा। रात भर दूर से आती हुई भेड़ियों और चीतों की आवाज़ पर ध्यान ही नहीं दिया मैंने।

कहीं मुझे प्रेत-पिशाच नहीं दिखाई दिये। काले नागों की फुफकारें भी मैं न सुन सका। जहरीले पेड़ों की पत्तियाँ चमकीली, चिकनी और सुन्दर होने पर भी विष से भरी रहती हैं। सौन्दर्य की पुंजीभूत ज्वाला-रूप कामिनियाँ भी विष से भरी रहती हैं। इस विष का सेवन करके भी जैनदेव की कृपा से एक दिन नष्ट हुए बिना बाहर निकल आया।—मगर न जाने आज कौन-सा जादू लेकर वह विष मेरे ऊपर दौड़ा है! मैं जिस दीक्षा को बड़ी होशियारी और सतर्कता से सँभाले आ रहा था—वही आज किसी निर्मम हाथ में पड़कर नष्ट-भ्रष्ट होने जा रही है। जैसे मिट्टी की कच्ची मूर्ति पथरीली ज़मीन पर गिर पड़ी हो। मैं इस संघाराम में इसलिए शामिल हुआ कि यह दुनियादारी से अलग है। मगर ब्रह्महत्या का पाप जिस तरह लगातार इन्द्र के पीछे लगा रहा—उसी तरह यह दुनिया भी मेरे पीछे पड़ी है। मालूम नहीं यह किस जन्म का फल है?

वह बाला कैसी निर्मल है! उसका हृदय स्वच्छ जलवाले तालाब-सा निर्मल है। वह उस दिव्य मूर्त्ति की तरह है जिसके सौन्दर्य को रसपूर्ण-कला-स्वरूप में उतार लेने के लिए समय-असमय का ध्यान

रखने की जरूरत नहीं रहती। इस निर्मल सौन्दर्य में क्या विष का वास हो सकता है ? क्या वह इक्ष्वाकु-वंश की लड़की ऐसी ही सुन्दरी न थी। नहीं, अब मुझे इस चंचल मन को बाँधकर तपस्या से पवित्र बनाना होगा।

इतने में पूर्व दिशा में अरुण रेखायें प्रस्फुटित होने लगीं। मैं किसी तरह आश्रम में पहुँचा। उस लड़की की शिक्षा पूरी किये बिना काम नहीं चलेगा। श्री सत्यशीलाचार्य की आज्ञा अनुल्लघनीय है। इस दिव्य वृद्ध ने मुझे अपनी आज्ञा से बाँध रखा है। जब वे उस लड़की को शिक्षा देने पर जोर दे रहे थे, तब कई गूढ़ इशारे किये थे। उनकी वाणी अमोघ है। मैंने निश्चय कर लिया कि उनको सब हाल सुनाऊँ। और उनके आदेशानुसार ही चलूँ।

दर्शन के दूसरे ही क्षण आचार्य महोदय ने मुस्कराते हुए बैठने का सकेत किया। वे बोले—बेटा, अब तुम्हारे लिए वह समय आ गया है। जब कि तुममें शुभ-परिणति का उदय होगा। तुम्हारी संघ-सेवा पूर्ण होनी चाहिये।

'स्वामिन, क्या यही धर्म-सेवा है कि मैं हमेशा अपमान सहता रहूँ। परिहास से अपरिचित आपकी वाणी ने भी आज इस मुस्कराहट का सहारा क्यों लिया है ? इसको अपनी बदनसीबी समझकर ही मैं बर्दाश्त कर रहा हूँ।'

'हे सौन्दर्य-तत्त्वोपासक ! तुमने कभी इस बात का ख्याल नहीं किया कि तुम्हारे चित्र-लेखन में एक छोटा सा दोष है। तुम्हारी कला में 'करुणा' का पूर्ण रूप प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। रूप और सौन्दर्य

की कल्पना में चाहे तुम्हारा कौशल कितना भी बढ़ा-चढ़ा हो, मगर उनमें एक ही तरह की परिपाटी चली आ रही है। करुणा-विहीन तुम्हारी मरुभूमि सदृश कला 'एको रसः करुण एव'—इस सिद्धान्त को भूल गई है। तुम्हारे बोधिसत्त्व के चेहरे पर गाढ़ी योग-मुद्रा है। मगर बुद्ध तो करुणा के अवतार थे। हाथ की मुद्राओं और भंगिमाओं में संपूर्ण सत्त्व का दिव्यत्व नहीं आ सका। सांसारिक रूप में प्रस्फुटित होनेवाला दिव्यत्व ही करुणा है। मेरी इन बातों पर रंज न करना। अपनी आराधना की इस कमी को पूरी करो।'

इन बातों को सुनकर मेरा दिल और भी आन्दोलित हो उठा। किसी तरह अपने विहार में पहुँचा। वहाँ की दिव्य-भिक्षु की मूर्ति के सामने सिर झुकाकर प्रकाश की याचना करने लगा। आँखें झपक गईं। घड़ियाँ बीतीं। एक दिव्य वर के समान मुझे अपना मार्ग प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगा।—मेरी मूर्त्तियों में कर्कशता है प्रभु! इतने दिनों से तपस्या की है—मगर असम्पूर्णता का परदा अभी घेरे ही हुए है?

मुझे परम गुरु का आदेश-सा सुनाई पड़ा—तुम अपने नियमों को भगवान के चरणों में अर्पित करो। मानव के गुण और शील पर विश्वास रखो और अपनी कला-दीक्षा में प्रवृत्त हो जाओ।

(५)

मुझे देखकर संभ्रांत-स्वर में जब गुरुदेव ने प्रश्न किया—तुम देव-बालिका हो?—तो किसी अनिवर्चनीय आनन्द से मैं काँप उठी।

बाहर से उनमें उतनी गम्भीरता झलकती न हो, फिर भी एक अलौकिक ज्योति प्रतिभासित होती रहती है। उनमें कुछ कमी भी है

ऐसा नहीं दीखता। वे उसी तरह मेरे पास आये और मेरे कन्धों पर हाथ रखकर 'यह गल्ती क्यों की ?'—कहकर मुझे झकझोर गये। अगर वे मुझे उन हाथों से सजा भी देते तो मैं समझ लेती कि मेरा जन्म पवित्र हो गया। उस क्षण सचमुच वे एक दिव्य पुरुष हो उठे थे। किसी एक अलक्ष्य और विचित्र शक्ति ने मुझे उनकी ओर खींच लिया। इतने में वे गायब हो गये।—क्या मुझे उस पाप का प्रायश्चित्त भी मिलेगा ? क्या मैं उस सत्पुरुष की तपस्या भंग करने के हेतु पैदा हुई पापिनी हूँ ? क्या मैंने उनके पवित्र नियमों में बाधा डाली है ? क्या उसी के फल-स्वरूप उन्होंने घोषणा कर दी है कि बिना किसी रोक-टोक और नियम-बन्धन के कोई भी व्यक्ति चित्रकला सीखने आ सकता है ?

उसके दूसरे ही दिन वे मुझे अपने ही पास बुलाने और चित्रकला के रहस्य बतलाने लगे। उनका रूप ही बदल गया। वे किसी विचित्र शक्ति से आवृत्त-से दिखाई देने लगे। प्रायः वे बहुत संक्षेप में उपदेश देते थे और उतने में ही तृप्त होनेवालों से खुश रहते थे। मगर अब झरने जैसे सुरीले, मीठे और जोरदार कंठ से घंटों बोलते रहते। मालूम नहीं यह परिवर्तन क्यों हुआ ? कैसे-कैसे प्रश्नों की झड़ी लगा देते।—उन दिनों जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ—उसका बखान नहीं हो सकता। हमेशा उन्हीं के पास रहने की इच्छा होती। यही आकांक्षा होती कि उनके चरण-रज को अपनी आँखों में छिपा लूँ—जिस तरह फूल मकरन्द छिपाता है। इसके अलावा बीच-बीच में कोई विवशता मुझे आकर घेर लेती।

'कलहार मालिका ! चित्रकला पूरी होने के बाद तुमने अपना जीवन किस तरह बिताने का निश्चय किया है ?'

'बुद्धदेव की कहानियाँ रचते हुए अपने जीवन को पवित्र कर लूँ, यही एक मात्र कामना मेरे हृदय को उद्वेलित कर रही है। इस से ज्यादा मुझे और कुछ नहीं सूझता।'

'मानव के भीतर जो दिव्यत्व है, वही कला के रूप में फूट पड़ता है, यह ठीक है। मगर विवाह के बाद तुम इस दीक्षा का कैसे पालन कर सकती हो कुमारी ?'

'प्रभु, मैं विवाह नहीं करूँगी।'

'यह असंभव है, तुम्हारे पिताजी किसी राजकुमार के साथ तुम्हारा ब्याह कर देंगे। तुम कैसे इस विधान का विरोध करोगी ? और जब कि तुम्हारे भाग्य में एक महारानी होना है।'

'मैं आपके पैरों की सेवा करती हुई इसी कला की उपासना में सारा जीवन व्यतीत कर दूँगी।'

'अरी पगली, स्त्री-सुलभ माया और प्रपंच ने तुम्हें भी नहीं छोड़ा है।'

ये बातें सुन मेरा मन विकल हो उठा। मेरी बातें मायावी कैसी हो सकती हैं ? क्या मैं अपना सर्वस्व गुरुदेव के पैरों पर समर्पित करने को तैयार नहीं हूँ ? गुरुदेव ने जहाँ बुद्ध की मूर्त्ति का निर्माण किया था—वहीं उनकी देवी की मूर्त्ति मैं बनाऊँ—यह मेरी प्रबल इच्छा हुई। जब वह मूर्ति बनकर तैयार हुई तो—यह मूर्त्ति दिव्य भावों से भरी है, यह चित्रकला के लिए एक दिव्य मणि के समान है—इस तरह गुरु-

देव को अपने शिष्यों और रसज्ञों के सम्मुख प्रशंसा करते देखकर मुझे बड़ी शरम मालूम हुई।

अपने गुरुदेव को छोड़कर एक मिनिट भर के लिए भी रह नहीं पाती। वे सचमुच ही 'ज्योत्स्ना प्रिय' हैं। उनकी गुफा में जाकर उनकी सेज आदि ठीक करने में कितना आनन्द आता है!

कभी कभी उनकी आँखों में ज्योत्स्ना खेलती रहती है, मगर कभी मेघों से आवृत्त द्वितीया की किरणों की तरह छिप जाती हैं। किसी कारण उपदेश देते हुए जब वे मुझसे छू जाते तो मेरा सारा रूप पिघलकर उनकी ओर बह जाता। उस तरह के दिव्य क्षणों में मैं, वे ·····जगत के हृदय के बीच में·····।

(६)

इस बालिका का हृदय तत्त्व मैं ठीक तरह से नहीं पा रहा हूँ। इसका जीवन ही मेरे लिए नया है। क्या यह और स्त्रियों से भिन्न है? इक्ष्वाकु वंश की उस राजकुमारी का सौन्दर्य बोधिनी का सौन्दर्य था। यह चन्द्रलेखा है। चाँदनी में खिली शिरीष-कुसुम है। दूध के उफान की तरंग है। इसके सौन्दर्य में क्या कमी है? इसका हृदय भी कितना पवित्र है? ओह—यही कलहार मालिका है?

यह बाला मुझे छोड़कर एक क्षण के लिए भी अलग नहीं रहती। वह खुद ही कई तरह के व्यंजन बना लाती। जब वह मेरे पैर पलोटने को तैयार हो गई और मेरे पैरों को छू लिया तो मानो मेरी देह में बिजली दौड़ गई। बिना अपने बाहु-पाश में बाँधे मैं अपने को रोक ही कैसे सकता हूँ? मगर मैं अधःपतन की ओर तो नहीं जा रहा हूँ?

उसके ओठ कमनीय ललाई लिये उत्पन्न ललित किसलयों के समान हैं। उसकी आँखें कैसी पवित्र ज्योति को धारण किये हुए हैं—मानो स्वच्छ अचंचल तालाब में प्रतिबिम्बित नक्षत्रों की कांति हो। उसका सौन्दर्य निर्मल नीलाकाश में विचरनेवाले सफेद पक्षी के समान है। उसका सौन्दर्य उस पक्षी के कंठ से निकला गान है; खूब बढ़ी हुई शस्य की श्यामलता का परिमल है; शरच्चन्द्रिकाओं की मधुर मिठास है। अगर मैं उस सौन्दर्य को अपनी देह, अपने हृदय और अपनी आत्मा में लीन न कर सका तो?

वह गुफा में अकेली बैठी चित्र-रचना करती थी। मैं उससे भेंट करने गया। उस समय उस कोमल बालिका का परीक्षा करने गया हुआ मैं उस गिरगिट के समान था जो सुन्दर सुकुमार फूल के बगीचे में उड़नेवाली तितली की घात में बैठा रहता है।

'आज क्या रचना हो रही है?'

'मैं उस पवित्र मूर्त्ति का चित्रण कर रही हूँ जिसने बुद्धदेव को अपना बचा-खुचा कपड़ा दे दिया था।'

'क्या है, मुझे भी देखने दो। वाह कैसी अद्भुत सृष्टि है। बाले, अब तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गई। अब शुश्रूषा की जरूरत नहीं रही।'

गोली लगी कबूतरी की तरह वह काँप उठी।

'प्रभु, आप मुझे प्यार नहीं करते? आपने मेरे लिए अपने सभी नियम ढीले कर दिये हैं। मुझे आम्र-मंजरी की तरह धन्य बनाकर अचानक मुरझाये फूल की तरह कहीं दूर फेंकना चाहते है?'

'तुम प्रेम के सम्बन्ध में क्या जानती हो?'

'प्रभु, आपने जब अपनी दिव्य शक्तियों का हिस्सेदार बना लिया है तब मेरे वास्ते समझने को और बचा ही क्या है ?'

'पगली, तुमने तुरन्त सवाल किया है—क्या आप मुझे प्यार नहीं करते ?—क्या मैं भी वही प्रश्न करूँ ? तुम भी मुझे प्यार करती हो ?'

'चाँदनी के ऊपर कुमुद का प्रेम है ? सूरजमुखी क्या सूरज को चाहती है ? प्रभु, मुझे ग्रहण कर लीजिये। जिस दिन मैं आपकी प्रेम-भिक्षा से अलग हूँगी, उस दिन होम की राख के समान नहीं हो जाऊँगी ?'

'मैं पैंतीस साल का बूढ़ा ठहरा और तुम अठारह साल की नव-यौवना हो !'

'प्रेम-कथा उम्र की अपेक्षा रखता है प्रभु !'

'मैं इस घड़ी तुम्हारी देह की आकांक्षा करूँ तो तुम अपना सत बिगाड़कर मेरी कामना तृप्त कर सकती हो ?'

'प्रभु, आपका प्रेम, आपका दिव्य प्रणय चाहती हूं। मैं अपने पतन की परवाह न करूँगी। अपने को आपके हाथों में समर्पित करना ही जीवन का परम मोक्ष मालूम पड़ता है। लीजिये—यही मेरी देह है। इस हृदय को प्रगाढ़ता के साथ हृदय से लगा लीजिये। मेरी ये विद्यायें आपकी हैं। मेरे ये स्वप्न आपके हैं। मेरी यह आत्मा आपकी है।'

मेरी देह काँप उठी। कैसा वह पवित्र जीवन-प्रवाह है। मैंने उसको जोभर अपने बाहु-पाश में बाँध लिया।

'कलहार मालिका ! क्या मेरे साथ विवाह कर सकती हो ! आत्मेश्वरी, क्या इसी महानन्द की प्राप्ति के लिए ही जैन देव ने मेरी रक्षा की थी ? मेरे लिये तू इतने वर्षों से बाट जोह रही थी ? यह तुम्हारी दिव्य मूर्त्ति मेरी है ? यह अद्‌भुत मुख, यह उन्नत ललाट, ये दिव्य लोचन, तुम्हारा यह परम सौन्दर्य—ये सब मेरा ही हैं ? तुम मेरी ही हो ! आओ, आत्मेश्वरी, आओ ! घुटने टेको। परम श्रमणक ही हमें आशीर्वाद देंगे।

'उस प्रभु का दास मैं भी तुम दोनों को आशीर्वाद देता हूँ। तुम दिव्य दंपति हो'—सत्यशीलाचार्य ने आशीर्वाद दिया। हम दोनों ने उठकर उनके सामने घुटने टेक दिये।

समुद्र-स्नान

मुनि माणिक्यं नरसिंहाराव

[श्रीमुनिमाणिक्यं नरसिंहाराव का जन्म गुण्टूर प्रान्त में १८९८ ई० में हुआ था। आपने अब तक पचास से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। आपकी कहानियाँ अधिकतर पारिवारिक जीवन का चित्र उपस्थित करती हैं। 'कान्तम' आपकी अधिकांश कहानियों की नायिका है और उसी के चारो ओर आपने हास्यरस से पूर्ण सृष्टि की है।

आपके कहानी-संग्रहों में 'कान्तम कथलु', 'नैनु का कान्तम', 'कान्तम कैफियत्तु' आदि प्रसिद्ध हैं।

लिखने की अधिकांश प्रेरणा आपको अपनी सहधर्मिणी से मिलती रहती थी, जिनकी मृत्यु, खेद है, अभी थोड़े दिन हुए हो गई है। आपकी एक पुत्री का भी स्वर्गवास पत्नी की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद हो गया। इन दो पारिवारिक क्षतियों से आप बहुत विकल हो गये हैं। सम्भवतः अब आपकी रचनाएँ एक नई ही दिशा में चलेंगी।]

समुद्र-स्नान

'इधर देखिये।'

'.....'

'आप ही से कहती हूँ'

'ऊँह, क्या है! कल स्कूल नहीं जाना है...मत उठाओ... सोने दो।'

'एक बात, देखिये...कल कार्तिक सोमवार है।'

'सोमवार ? कहाँ ?'

'कहाँ क्या ? अभी नींद नहीं टूटी क्या ? कार्तिक सोमवार-व्रत करेंगे ?'

'मैं नहीं करूँगा ।'

'मत कीजिये । मैं जरा समुद्र-स्नान करने जाती हूँ । आप ज़रा बच्चो को देखिये । मैं अभी आती हूँ ।'

'नहीं...'

'नहीं क्या ? बड़ा पर्व दिन है । अभी चली आऊँगी, 'बड़ी' तो मेरे साथ ही जायगी । छोटे बच्चों को ज़रा देखते रहिये ।'

इसके बाद नींद की खुमारी में मैंने क्या कहा, याद नहीं । हाँ, उसका गाड़ी पर चढ़कर जाना और अपना किवाड़ बन्द कर सो रहना मुझे याद है ।

कान्तं को घर से बाहर गये कोई पन्द्रह मिनट हुए होंगे कि सबसे छोटी लड़की मा को बगल में न पाकर 'अम्मां' कहकर चिल्ला उठी । अब तो मुझे भी उठना ही पड़ा । झुंझलाते हुए, कुढ़ते हुए पास जाकर—जाग गई बेटी ? सो जा मुन्नी— कहा । लेकिन मेरी बात उसकी समझ में आये तब तो ! बीच खाट पर खूँटे की तरह उठकर बैठ गई और 'मा' 'मा' चिल्लाने लगी । फिर कुछ देर उसने इधर-उधर देखा, और माता को कहीं न पाकर धीरे से उठकर नीचे उतरने के लिए सीढ़ियो की ओर चली ।

पर, भला वह सीढ़ियो से उतरती कैसे ! इसलिए मैं ही उसका मतलब समझकर नीचे ले गया । रोती हुई वह पहले रसोईघर में गई ।

तब पिछवाड़े के किवाड़ के पास जाकर थोड़ी देर तक रोई। मैंने वह दरवाजा खोल दिया। वह पिछवाड़े के आँगन में गई। उस अन्धेरे में ही उसने सब जगह खोज डाला। मा कहीं न मिली।

मैंने समझा कि मा को घर में न पाकर अब मेरे ऊपर ही भरोसा करेगी और मैं जैसा कहूँगा वैसा करेगी। इसलिए उसे गोद में उठा लिया और फिर सीढ़ियों पर से ऊपर आया। उसने रोना ज़रा भी कम नहीं किया; बल्कि और जोर-जोर से रोने लगी।

मा घर में नहीं है, यह जानकर भी हठ करना ज़रा भी अच्छा न लगा। फिर मैंने अपनी ओर से कुछ भी कसर न रखते हुए साफ-साफ कह दिया—'बेटी, देखो, तुम्हारी मा उधर—समुद्र-स्नान करने गई है। एक घण्टे में आजायगी। मैं तब तक तुमको गोद में लिये रहूँगा, चुप रहो बेटी! रोने से क्या फायदा—बेकार।'

उसकी समझ में यह बात न आई हो, सो बात नहीं। अच्छी तरह समझ गई वह। उसने अस्पष्ट-स्वर में कहा अम्माँ...उदल...जा...?'

'हाँ, यही बात है...अब मत रोओ। बिस्कुट चाहिये? दूँ?'

अब कहिये, उसको चुप हो जाना चाहिये न? लेकिन वह चुप क्यों होने लगी? रोना जारी रहा। इतना ही नहीं; उठा लेने पर गोद से उतरने की कोशिश, उछलना, कूदना, कन्धे पर सुलाकर थपकी देने पर खिसकने का प्रयत्न—इस तरह वह शरारत करने लगी।

मैंने हाथ से बलपूर्वक दबाकर कन्धे पर सुलाया। वह 'अम्माँ, अम्माँ' कहकर जोर से रो उठी।

'अब क्या करूँ भाई? यह कैसी बे-इन्साफ़ी? अब मुझे गुस्सा आ

रहा है। मारूँगा—।'—कहकर हाथ उठाकर डराया। अब तो रोने ने और भी भयंकर रूप धारण कर लिया।

'रोना है तो रो! मैं क्या करूँ? इनको समय नहीं देखना चाहिये क्या?'—मैं चिढ़कर कन्धे पर उसी तरह सुलाये रहा।

इतने में 'मा-आ-आ' कहता हुआ उठा छोटा लड़का। उसी पर की यह लड़की है। यह चौथा साल है। बातें अच्छी तरह समझ लेता है।

मैंने कहा—बबुआ रे, सो जा!

उसने पूछा—मा कहाँ है?

'मा समुद्र-स्नान करने गई है। आती होगी। बेटा, सो जा! अभी सबेरा नहीं हुआ है। सो जा!'

'मैं नहीं सोऊँगा! नींद नहीं आती।'

'अच्छा तो खेल। वह—किताब में तस्वीरें देख।'

'नहीं।'

'तो नाच!'

'ऊँ हूँ।'

'फिर क्या करेगा?'

'मा के पास...'

'अरे गधे, मा समुद्र-स्नान करने गई है। समुद्र यहाँ से दो कोस है। तू नहीं चल सकता। मा थोड़ी देर में आ जायगी।'

'नहीं आयेगी'—उसने दृढ़ता से कहा।

खैर, इतना कहकर चुप रह जाता तो खैरियत थी, पर उसने तो

सीढ़ियों से उतरकर समुद्र का रास्ता पकड़ा। भला, इस अन्धकार में चार बरस का लड़का चार मील कैसे जायगा? मैं भगवान को कोसने लगा कि इन बच्चों को ज़रा भी समझ क्यों नहीं देता।

इसका साहस तो देखिये। बेवकूफ़, समुद्र चला है।

छोटी के तो कहने से भी समझ में न आया। पर, इसकी समझ में आये, इस लिए उसकी बाँह पकड़कर कहा—अरे बेटा, मत रो! क्यों रोता है?

'मा।'

'अच्छा, मा के लिए रोता है?—मा समुद्र-स्नान करने गई है। आती ही होगी। मत रो—रोने का क्या काम है?'—कारण के साथ समझाने के ख़याल से मैंने कहा।

'मा?—उसने फिर कहा।

'थोड़ी देर में आती है।'

'नहीं आयेगी'—उदास मुँह बनाकर उसने कहा।

'आवेगी बेटा; सबेरा होते ही आयेगी।'

कितना ही समझाया कि आयेगी; पर वह रोता रहा कि नहीं आयेगी। जरा भी मेरी बात पर कान नहीं दिया। मा नहीं आयेगी—यह उसे दृढ़ विश्वास हो गया।

'आयेगी बेटा। मुझे छोड़कर चली जानेवाली स्त्री वह है नहीं। मुझे खूब मालूम है। ऐसा सोचना ही गलत है। मेरी बात मानो—वह जरूर आयेगी।'—मैंने बहुत समझाया; पर उसे ज़रा भी विश्वास न हुआ।

'क्यों मेरी जान खा रहे हो तुम। कहता तो हूँ—तुम्हारी मा जरूर आवेगी।'—मैंने जोर से गुस्से के साथ कहा। लेकिन ऊँ हूँ—जरा भी उसको विश्वास न हुआ।

हे भगवान, अब कैसे इसको विश्वास दिलाऊँ! अब तो यह समझता ही नहीं।

खैर, इसी तरह होता रहे तो भी ठीक। पर यह तो हाथ-पैरवाला ठहरा। बार-बार सीढ़ियाँ उतरकर समुद्र का रास्ता पकड़ता है। छोटी लड़की गोद में उठाने पर भी रो रही थी। इसलिए उसे नीचे उतारकर इसके पास आया कि किसी तरह समझाऊँ।

मैं इधर आया, तब तक वह छोटी लड़की मेरे कमरे में गई खोजने अपनी मा को। मानो मैंने ही उसकी मा को कहीं छिपा रखा है।

छोटी कोठरी में सुशीला मा की साड़ी ओढ़े सोई थी। मा की साड़ी देखकर उसके ऊपर जा गिरी छोटी लड़की। बस 'मा', 'मा' चिल्लाती उठी सुशीला भी।

वह ज़रा बड़ी है न? इसलिए कहा—बेटी सुशीला, ज़रा बच्ची को बहलाओ। मा के लिए रोती है।

'मा कहाँ गई?'—सुशीला ने पूछा।

'समुद्र-स्नान करने गई है।'—मैंने कहा।

'मुझे क्यों नहीं ले गई?'—कहकर वह भी रोने लगी।

'अरे, तू भी रोयेगी, तो काम कैसे चलेगा? इन्हीं दोनों ने तो मुझे हैरान कर रखा है। अब ज़रा भी रोई तो बस ठीक कर दूँगा। कहकर डराया। उसने डर से रोना बन्द किया।

मगर छोटी लड़की ने अब तक रोना नहीं छोड़ा था। छोटा लड़का भी मा के न आने की कल्पना करके एक स्वर में रो रहा था। मैं कहता—मा आवेगी, चुप रहो। वह कहता—नहीं आवेगी।

जी इतना ऊब गया कि इच्छा होती थी सिर फोड़ लूँ। इसी बीच सुशीला ने जाकर छोटे भाई को जगा दिया और यह भी कह दिया कि मा चली गई।

वह जोर से रो उठा। डाँटा तो ढाक के पत्ते जैसा मुँह बना लिया।

'बबुआ रे, लड़के कहीं रोते हैं? लड़की रोती है न?'—कहकर मैंने अपील की। तब उसने अपनी उमड़ी हुई रुलाई रोककर साहस दिखाया।

उन दोनो को किसी तरह चुप किया। पर इन (छोटों) दोनो को चुप करना मुश्किल हो गया। कैसे चुप किया जाय, क्यों कहा जाय, कुछ भी मेरी समझ में न आता था। साम, दाम, दंड, भेद—सबसे काम लिया। फायदा कुछ न हुआ।

दोनो को बिस्कुट दिये। दोनों ने फेंक दिये। छुहारा दिया। दोनो ने मेरे मुँह पर खींच मारा। खिलौने दिखाये। पैरों से ठुकरा दिये। मा का फोटो दिखाकर कहा—यह देखो, मा है। फिर भी रोना बन्द नहीं हुआ। लड़के ने कहा—यह मा नहीं है। फिर विवाद। मैं कहता—मा ही है। वह कहता—मा नहीं है।

छोटी लड़की कुछ न समझकर रोती। मगर यह शरारत से रोता। फोटो को भी वह नहीं मानता। तब क्या किया जाय? इस वाद-विवाद और समझाने-बुझाने से कुछ फायदा होता न देख मुँह

बन्द कराने के लिए मैंने पीठ पर दो चाँटे जड़ दिये। अब वह और ज़ोर से चिल्लाता हुआ सीढ़ियों से उतरने लगा।

अँधेरे में कहीं डर जाय, इसलिए लड़की को गोद से उतारकर उसके पीछे गया और पकड़कर ऊपर लाने लगा। इसी बीच छोटी लड़की दो सीढ़ियाँ उतर चुकी थी और लुढ़कने को तैयार थी। बाप रे, न मालूम इन लोगों की मा हरदम कैसे इनके साथ रहती है। हे भगवान!—उसको भी उठा लिया और दोनों को खाट पर डाल दिया। डाल क्या दिया, पटक दिया। उनके चिल्लाने में फिर तेजी आ गई। किले को चारो तरफ से घेरकर जब शत्रु दरवाजा तोड़ने लगते हैं, और भागने का कोई रास्ता नहीं रह जाता है, तब गिरफ्तार राजा की जो हालत होती है, उसी तरह मैं हताश चुपचाप बैठ गया। उन्हें चुप करने की कोशिश भी छोड़ दी।

इतने में अरुणोदय हुआ। अँधेरा दूर होने लगा। शायद वह आती होगी, इस धीरज से मैंने कहा—बेटी सुशी, जरा बाहर जाकर देख तो, मा आती है?

लेकिन कहाँ है सुशी! अरे कहाँ गई? और उसका भाई भी तो नहीं है। बस दोनो कहीं चले गये। मेरा कलेजा धड़क उठा। कहाँ गये ये दोनो?

मैं इन दोनो से उलझा हुआ था और वे खिसक गये। गली की ओर का दरवाजा खुला था। गली में जाकर देखा। ज़ोर-ज़ोर से पुकारा। कहीं पता नहीं। कहाँ गये ये? कितनी दूर, किधर चले गये? मुझे चिंता होने लगी। सुशीला के हाथ में सोने की चूड़ियाँ

हैं। कोई छीन न ले या उस सोने के लोभ में कहीं कुछ कर न बैठे। कहीं ये भूल न जायँ।—मेरा हृदय मेरे वश में न रहा। उनको खोजने भी जाऊँ तो इनको छोड़ कैसे जाऊँ?

इतने में छोटी लड़की रोते-रोते थककर चुप हुई। कहीं रोते-रोते कंठ न सूख गया हो, इसलिए कंधे पर लिये ही लिये दूध के डिब्बे से थोड़ा-सा दूध निकालकर दिया और कहा—पियो बेटी! उसने एक घूँट पीकर बस तुरत गिलास मेरे ऊपर दे मारा। सारे कपड़े भींग गये। मुँह पर दूध के छींटे। बालों में दूध की बूँदें।

'छिः—अभागे सब···यह दुर्दशा—'कहते हुए खीझकर मैंने उधर देखा। अरे यह क्या। लौंडा कहीं गायब हो गया। देखा तो समुद्र का रास्ता पकड़ने को दरवाजे पर पहुँच चुका था। उस समय बिल्कुल सवेरा हो चुका था। 'अरे पाजी, तू कहाँ जायगा रे!'—कहता हुआ मैं दौड़ा पकड़ने को। वह भागा। बस पैर फिसला और गिरा वह नाली में। मैं भी फौरन उतर गया उस घुटने तक सड़े हुए कीचड़ और पानी में। शायद उसके मुँह में वह गन्दा पानी गया भी। मैंने झट उठा लिया। उसके मुँह में, देह में—सब जगह कीचड़ लग गया था। वह रोता हुआ लिपट गया मुझसे और वह दुर्गन्ध से भरा कीचड़ मेरे मुँह और कपड़ों में लगा दिया।

इतने में दीखा, छोटी लड़की भी उधर ही धीरे-धीरे खिसक रही है। यह भी कहीं जाकर गिर न जाय, इस डर से उसे एक बगल में उठा लिया।

उस समय मेरा रूप देखने लायक था। दोनों बच्चे दोनों बगल

में। मुँह पर नाली का काला कीचड़। घुटनों तक कीचड़, मानो मोजे पहन लिये हों। सिर पर दूध की बूँदें।

मैं इसी स्थिति में था कि गाड़ी का रुकना सुनाई पड़ा।

मैं यह सोचता वहीं खड़ा रहा कि मुझे इस स्थिति में देखकर मेरे कष्टों का अनुमान कर, मेरे ऊपर दया करेगी; उसको आराम से समुद्र-स्नान कराने के लिए मैंने कितनी तकलीफ़ उठाई है, यह सोचकर ज़रूर कृतज्ञता प्रदर्शित करेगी।

लेकिन श्रीमतीजी आईं तो आग बरसाती हुई—इन दोनों बच्चों को छोड़ क्यों दिया? ये दोनों वहाँ पुल पर बैठे रो रहे थे।—वाह!

मैं कुछ न बोला। वहीं खड़ा रहा। मेरी आकृति कह रही थी—मेरी हालत तो देखो।

एक क्षण तक उसने मुझे देखा। सारी बातें समझ गईं।... आँखों में कुछ समवेदना झलकी।...फिर एक मुस्कान...बस।

छोटी लड़की साँप की तरह सरक गई मा के पास। छोटे लड़के ने दोनों हाथों से जाकर पकड़ लिया मा को।

कान्तं बैठकर छोटी को दूध पिलाने लगी—मेरी बेटी, कितना रोई? गला सूख गया रानी का।...आ बेटा, तू आ। बाबू तू भी रोया?... आ हा हा! तुमको छोड़कर मैं चली गई थी। लेकिन मेरा प्राण तुम्हीं लोगों में लगा था। कितना रोया है! ओह! यह कीचड़ कैसी है बेटा? गिर गये? बाबू मेरे! बच्चों को कितना रुलाया मैंने?—इस तरह कहती, अपने को कोसती। कभी उसको चूमती, कभी उसको पोंछती, कभी उससे पूछती। बहुत देर तक यही क्रम रहा।

लेकिन मुझ अभागे के लिए एक भी सहानुभूति के शब्द नहीं, एक भी कृतज्ञता भरी नज़र नहीं, एक भी मुस्कान भरी अच्छी बात नहीं। मानो इस अभागे ने कुछ तकलीफ़ ही नहीं सही।

बच्चों की दुनिया माता थी। माता ने सब प्रेम बच्चों को ही दे दिया। अब मेरे लिए स्थान कहाँ है ?

मैं बहुत देर तक उसी तरह सूरज के सामने खड़ा देखता रहा — उन्मत्त की तरह।

मानव और पशु

मुद्दू कृष्ण

[श्रीमुद्दू कृष्ण ने तेलुगू साहित्य के सर्व प्रमुख केंद्र राजमहेन्द्री में जन्म पाया है। इस समय आप २९ वर्ष के हैं ; पर देखने में आप २५ वर्ष से अधिक के प्रतीत नहीं होते हैं। पारिवारिक चिन्ताओं से मुक्त आप साहित्य और कला की सेवा में स्वच्छन्द जीवन बिताते हैं।

विचार आपके बड़े ही प्रगतिशील और उग्र हैं। कुछ वर्ष पहले आप 'ज्वाला' नामक एक पत्रिका भी तेलुगू में निकालते थे। वैसी पत्रिका अब भी तेलुगू में कोई नहीं है। सचमुच श्रीमुद्दू कृष्ण के अन्दर भीषण ज्वाला है।

आपने थोड़ा लिखा है, पर जो लिखा है वह तेलुगू में और कोई नहीं लिख सकता। आप समाज में भी एक विद्रोही व्यक्ति हैं—रूढ़ियों की मर्यादा आप स्वीकार नहीं करते।

'अशोकवन' नामक आपके नाटक ने तेलुगू संसार में बड़ा आन्दोलन किया। इस नाटक में आपने सीता और रावण के प्रेम का बड़ा मनोवैज्ञानिक और सजीव चित्रण किया है। 'अनारकली' आपका एक दूसरा सफल एकांकी नाटक है। हिन्दी पाठकों के लिए ये दोनो नाटक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ने अनुवाद में उपलब्ध कर दिये हैं।]

मानव और पशु

'मे—मे—एँ—एँ' 'मे—मे—एँ—एँ'

बच्चे ने मा की ओर देखा, फिर तारों की ओर !

'मे—मे'—फिर बोला ।

'मे—मे'—फिर मा ने कहा ।

बस, इतना ही । पागुर करते हुए, तारों की ओर निहारते हुए—सो गया—बकरी का बच्चा ।

× × ×

'अम्माँ—वह...'—लीला ने कहा।

'वे ? सितारे हैं बेटी। कहो तो 'सितारे—सि-ता-रे'।'

'छि-ता-ले, छिता-ले'।—नहीं कह सकी।

'वह ?' फिर बोली।

'वे भी सितारे हैं। वहाँ भगवान रहते हैं। भगवान को प्रणाम करो बेटी !'—दोनों हाथ पकड़कर नमस्कार करवाया मा ने। पलकों पर पत्थर का बोझा था और हृदय में भगवान की प्रतिध्वनि उठ रही थी। यही सब देखती, बकती, प्रणाम करती—लीला सो गई।

(२)

और बहुत-से बच्चे आये। बकरी का बच्चा सबों के साथ उछल-कूद करने लगा। किसी को मारा, किसी को पटका। दूसरे ने मारा तो चिल्लाया। मा भी बच्चों के साथ दौड़ी। जहाँ-जहाँ वे गये, वह भी वहाँ-वहाँ गई। खेली, फिर बच्चों का खेल देखती हुई पेड़ की छाया में सो रही।

× × ×

लीला के साथ खेलने के लिए भी बच्चे आये। कुछ देर तक वह सबों के साथ खेली। बकरी के बच्चों को खदेड़ा। बकरी का बच्चा रसोई-घर में घुस गया, तो ये सब भी घुसे। जब और सब बच्चे अपने-अपने घर चले गये, तब लीला की मा ने उसको बुलाकर खूब डाँटा। रात में जब लीला सोई तो बकने लगा—'सुब्बी अच्छी नहीं, वह अछूत है, शूद्र है। उसके साथ नहीं खेलना चाहिये।'—उसके निर्मल हृदय

में एक विचित्र भाव पैदा हुआ। पवित्र रक्त फटकर दूसरे रंग का हो गया।

× × ×

दूसरे दिन लीला के घर कुछ लोग आये। उनमें एक लड़का भी था। उसको 'बावा'* कहकर पुकारने के लिए लोगों ने सिखाया लीला को। उसको पानी देने के लिए कहा। उनके कहने के ढङ्ग और चेष्टाएँ देखकर लीला को लजाने की आदत पड़ गई। धीरे से—बावा से ब्याह करेगी?—आदि प्रश्न होने लगे और 'हाँ करूँगी'—का जवाब भी आने लगा। लीला के मन में एक अज्ञात परिवर्तन होने लगा।

(३)

एक दिन बकरी के बच्चे के पेट में दर्द हुआ। 'मे-मे' करके बहुत चिल्लाया। मा भी उसके साथ 'मे-मे' करती हुई पास सटकर सोई। दिन-भर बकरी के बच्चे ने कुछ नहीं खाया। दर्द कम हो गया।

× × ×

लीला को एक दिन अजीर्ण हुआ। भूख नहीं थी। फिर भी मा ने ज़बर्दस्ती भात ठूँसकर खिलाया। दूसरे दिन बुख़ार आया। डाक्टर आया। दवा देने पर भी लीला दस दिन तक खाट पर पड़ी रही।

---

* 'बावा'—तेलगु में फूफी या भाभी के बड़े लड़के को कहते हैं। प्रायः लड़कियों की शादियाँ उन्हीं से होती हैं। अतः यह शब्द 'पति' का द्योतक हो जाता है।

(४)

बछिया खूब बढ़ रही है। खूब देह खींच रही है। लोग देख-देखकर खुश हैं। वह झुण्ड में बछड़ों और बछियों के साथ जाती है। उसकी आज़ादी में कोई बाधा नहीं।

× × ×

लीला बड़ी हो रही है। वह जिस खिड़की के पास बैठकर पढ़ती थी—उसके सामने की खिड़की के पास ही शास्त्रीजी का लड़का भी बैठकर पढ़ने लगा।

एक दिन लीला के पिता ने लीला की कुर्सी बिना खिड़कीवाले दूसरे कमरे में रखवा दी। कहा कि इस कोठरी में सड़क की सब धूल आती है। स्वास्थ्य के हक में यह बहुत बुरा है, और—लीला समझदार लड़की है। इसलिए खुद ही रुख देखकर अपनी आज़ादी की सीमाओं को धीरे-धीरे संकीर्ण बनाने लगी।

कोई दूसरा पुरुष आ जाय तो भीतर चले जाना, अनावश्यक सावधानी रखना आदि शुरू हुआ। इस परिवर्तन से अन्यमनस्कता, एक अनजान चिन्ता आदि उसके सिर पर सवार हुई। उम्र के मुताबिक शरीर ने बढ़ना छोड़ दिया।

(५)

बछिया (ओसर) यों ही चिल्लाने, रस्सी तुड़ाने लगी। लोगों ने सोचा—कुछ बात है। दूसरे दिन उसे एक बढ़िया, सुन्दर साँड़ के पास ले गये।

× × ×

लीला मा के पास आकर बोली—मा, जाड़ा-सा लगता है। कुछ अच्छा नहीं लगता। मा ने कहा—ओढ़ना ओढ़कर सो रहो, दवा मँगाती हूँ...। लीला हल्दी लगाकर अलग चटाई पर सुला दी गई। बगल में एक नारियल रख दिया गया। † अड़ोस-पड़ोस की औरतें आईं। उत्सव का समा छा गया। लीला के 'बाबा' को तुरत हल्दी लगाकर पत्र लिखा गया।

उस दिन से लीला के मन में 'पुरुष' एक विचित्र वस्तु हो गया। झिझक समा गई। पहला स्वभाव एक दम बदल गया।

(६)

ओसर ब्यानेवाली है। उसको एक पेड़ से बाँध दिया गया। लोग तमाशा देख रहे थे। वह कुछ देर तक छटपटाई। पैर पटके। बच्चा बाहर आ गया। बच्चा गिरते ही वह उठी। बच्चे के शरीर को चाट-कर साफ़ कर डाला। बछड़ा दो बार उठने की कोशिश करते हुए—गिरा। तीसरी बार उठ गया और टटोलता हुआ, मुँह थन के पास ले जाकर दूध पीने लगा। मा प्रेम से बछड़े की देह चाटने लगी।

× × ×

लीला के दर्द शुरू होते ही नर्स और डाक्टरों को खबर दी गई। किसी तरह एक बन्द कमरे को खाली करके प्रसूति-गृह बनाया गया।

लीला को बहुत तकलीफ हुई। बच्चा नहीं निकल सका। डाक्टर ने कारसेप्स से बच्चे को निकाला। डाक्टर खीझकर बोला—इस मुल्क

† प्रथम मासिक के समय ये सब उपचार किये जाते हैं।

की मूर्खता है कि इतनी छोटी और कमज़ोर लड़कियों की यह हालत कर देते हैं ! लोगों ने कहा—क्या किया जाय। लड़के की दादी ने बहुत ज़ोर डाला। हमसे रोकते न बन पड़ा।

पैदा होने के कुछ ही देर बाद शिशु चल बसा ! लीला की बेहोशी अभी तक नहीं गई।

दूसरे दिन डाक्टर ने लोगों को डाँटा—यह अन्धेरी कोठरी, हींग और लहसुन की गन्ध ! छिः, बदलिये आसारेवाली कोठरी में इसका बिछावन। लेकिन किसी ने सुना नहीं।—ये अंग्रेज़ी डाक्टर ऐसा ही कहते हैं।

लीला अभी खाट पर ही है। इतने में वज्रपात हुआ। लीला का पति गोदावरी में तैरने गया था, उसी में डूब गया ! सारा घर उड़ने पर हो गया। कुहराम मच गया। लीला बेहोश होकर खाट से नीचे गिर गई।

दो महीने बीत गये। लीला उठती है—मगर ताक़त ज़रा भी नहीं है। हिस्टीरिया मामूली बात होगई है। दरवाज़े पर कभी जाती, ओसर या बकरी के बच्चे को देखती तो बेहोश होकर गिर जाती।

(७)

दोनों वक्त सिर पर मलने के लिए डाक्टर ने कुछ तेल दिया। सिर देखकर कहा—इतने बाल क्यों ? कुछ कटा दीजिये तो बेहतर हो। दवा मलने में आसानी होगी। इस पर विचार हुआ। लोगों ने कहा—मेमों की तरह यह कैसे होगा ? कैसे बढ़िया बड़े-बड़े बाल थे। एकाएक बूढ़ी गोवुलम्मा ने कहीं से आकर कहा—यह क्या ? तुम लोगों की

अक्ल मारी गई है क्या ? अरे बाल तो गया ही। आज नहीं तो कल। कभी न कभी तो कटाना ही है। क्या करेंगे ? उसका भाग्य। जब जैसा समय आता है—वैसा होता ही है। लोक-वेद की बात है। कटा दीजिये बाल। कल अच्छा दिन है। हजाम को भी बुलाया है। गोवुलम्मा बराबर गाय की तस्वीरवाली साड़ी पहनती है, इसलिए लोग गोवुलम्मा कहते हैं। उसके सिर पर कभी किसी ने बाल नहीं देखा होगा।

बहुत आगा-पीछा के बाद लोगों ने आख़िर निश्चय कर ही लिया कि लीला का बाल कटा देना चाहिये। अकस्मात् लीला बेहोश होकर गिर पड़ी। लोगों ने कहा—हिस्टीरिया है। वह बहुत देर तक छट-पटाती रही।

जब लीला की बेहोशी दूर हुई—तब तक खूब साँझ हो चुकी थी। होश में आने के बाद न मालूम उसे क्यों लड़कपन की बकरी का बच्चा, बछिया, कुत्ते का बच्चा, बिल्ली का बच्चा—सब एक-एक करके याद आने लगे। आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। मन में आया—मेरी ही यह हालत होनी था ?...हाथ से केश छू गया। भूला हुआ दुःख फिर उमड़ आया। सब बाल उसने आँखों पर डाल लिये। सोचने लगी—कल ये केश न रहेंगे। हाँ, ठीक है। सब तरह से सुख-विहीन जीवन के लिए सौभाग्य और सौंदर्य ही क्यों ?—इतने में गोवुलम्मा का खत्वाट याद आया। ज़ोर से चिल्ला उठी। फिर बेहोश होगई। लोगों ने हिस्टीरिया का नाम लिया।

(८)

लीला गोवुलम्मा के साथ आई। घर के अन्दर लीला को लोगों की

आँखों के सामने जाने की इच्छा नहीं हुई। इसलिए पिछवाड़े की ओर गई। बचपन से साथ साथ खेले और बढ़े हुए जानवर आज उसकी ओर दूसरी दृष्टि से देख रहे थे। आज उन्हें लीला को देखकर अचरज हो रहा था। लीला बछिया के नज़दीक से गुज़री तो वह अचरज से देखकर भाग गई। ओसर ने फुफकारकर सींग से मारना चाहा। इतने में घर से कुत्ता निकला और उसे देखकर भूँकने लगा। लीला चिल्लाई और गिर पड़ी।

सब लोग दौड़कर आये। लीला गिरी तो घुटा हुआ सिर फूट गया। लोग हाथ पर उठाकर उसे अन्दर ले गये।

बछिया जो भाग गई थी—मा के पास आई। ओसर सशंक दृष्टि से देखती हुई पूँछ उठाकर बछिया को चाटने लगी। कुत्ता अभी भूँक ही रहा था। उसे सूर्य ने भगा दिया। बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ करती, सब के पैरों से रगड़ा लेती कोने में जाकर सो गई।

चिढ़ती हुई गोबुलम्मा बोली—वाहरे अक्ल! क्यों दुनिया-भर की बेकार दवाएँ देकर बेचारी का दिमाग़ खराब कर रहे हो तुम लोग! सबेरे से उसकी तबियत ख़ुद ही अच्छी हो जायगी। सिर का पाप उतर गया न?

मरीचिका

मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री

[श्रीमल्लादि रामकृष्ण शास्त्री मछलीपट्टम के एक नवयुवक लेखक हैं और अभी आपने बहुत कम ही रचनाएँ प्रकाशित की हैं। पर इन थोड़ी-सी रचनाओं ने ही पाठकों को आकर्षित किया है।

आपकी अधिकांश कहानियों का विषय मनोविज्ञान है। हृदय की निम्नतम गहराइयों में आप पहुँचते हैं और उसका सफल चित्रण करते हैं।

'मरीचिका' आपकी एक सुन्दर रचना है जो आपकी कला का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है।]

मरीचिका

इस विश्व-मंच पर कितने ही ऐसे विषय अन्तर्वाहिनी नदी की तरह हैं—जिनको दुनिया कभी समझ नहीं सकती।

सुख-सम्पत्ति में डूबते-उतराते रहनेवाले परिवार में बहुत मन्नतें और पूजा के फल-स्वरूप पैदा हुआ 'बाबू' जिसने कभी कठोर अवनि पर पैर नहीं रखा—अगर समझता हो कि दरिद्रता सिर्फ उसी के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिए असह्य वस्तु है—तो वह असाधारण

बात नहीं कही जायगी। अब तक अपने हाथों से रुपया छूने की उसे ज़रूरत ही नहीं पड़ी थी। मगर जब सचमुच ज़रूरत पड़ी तो तांबे का धेला भी हाथ में न रहा।

मगर 'विषाद योग' यहीं खतम नहीं हुआ। उससे भी बढ़कर एक बात हुई। अब स्त्री के मायके से मिले धन के ऊपर गुज़ारा करने के सिवा दूसरा उपाय न था।

आज तक उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कभी कोई ऐसा काम भी करना पड़ेगा जिससे दुनिया का अथवा अपना ही कुछ फायदा हो। इसलिए आर्थिक स्थिति बदलने पर भी उसे अपने कर्त्तव्य का बोध नहीं हुआ। कभी-कभी उसको अपनी स्थिति विचित्र मालूम पड़ती थी; मगर सूझता कुछ न था।

गृहस्थाश्रम में आये साल-भर से ज्यादा हुआ था। बच्चे का तीसरा महीना जा रहा था।

'अजी, ज़रा झूले की जंजीर हिलाइये! बच्चा चिल्ला रहा है।'—दरवाजे के पास आकर पुकारा युवती पत्नी ने, हाथों में अध-बँधा जूड़ा थामे हुए—मानो छुट्टी नहीं है, इसकी गवाही दे रही हो। 'बाबू' कोई कहानी पढ़ रहा था—जिसे छोड़कर आना मुश्किल था। पत्नी ने फिर पुकारा। तब भी वह नहीं उठा। अब उसने जोर से पुकारा। इस पुकार में जरा डाँट की आवाज़ भी थी।

और वक्त बिना कारण ही पत्नी से रगड़ा लेकर जानेवाला 'बाबू' उठकर भीतर जाने लगा तो दरवाजे पर खड़ी पत्नी से बचकर चला गया, जैसे वह अछूत हो। वह जजीर हिलाने लगा। मगर बच्चे की

चिल्लाहट अब भी कम न हुई। फिर भी काँपता हुआ हाथ जंजीर को मंत्र की तरह हिलाता ही रहा। उस थोड़ा हिलने से ही उसका अस्थिर हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। जंजीर पकड़े हुए हाथ पर सिर टेककर धँसी हुई भारी आँखों से उसने पत्नी की ओर देखा। मगर उसके मुँह पर कोई भी परिवर्त्तन न देखकर और भी हताश हो गया। रात में भोजन का समय इधर-उधर घूमकर टाल दिया और देर से घर आया। एक दूसरी खाट ज़रा दूर खींच ली। सारी रात व्याकुलता से करवटें बदलते हुए बिता डाली।

मन को कुछ तकलीफ़ तो हुई जरूर, मगर पत्नी का अपराध कुछ समझ में न आया। इसलिए मन को किसी तरह समझा-बुझाकर फिर गृहस्थी में लगाया।

× × ×

घाव सूख ही रहा था कि उसी पर एक चोट और लगी। पत्नी के पैर भारी थे। वह सूखकर काँटा हो गई थी। प्रसव के लिए मायके भेजने का विचार था 'बाबू' का। मगर उसने इनकार कर दिया और बोली—कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ मैं? मेरे बहनोई सब मेरी बहनों को मोटरों में लिये हवा खाते फिरते हैं और मैं···इसके बाद की बातें 'बाबू' न सुन सका।

× × ×

रसोईघर में चूल्हे पर से बर्तन उतार रही थी तो अँगुलियाँ जल गईं। रोती हुई बोली—इतने बड़े बाप की बेटी होने से ही क्या···!

उस समय बाबू कुछ उमग में था और पत्नी से कुछ कहने भीतर आ रहा था। मगर उसके कान में यह बात पड़ी ही क्यों

× × ×

'सिनेमा नहीं ले चलेंगे !'

'किसी दूसरे दिन'

'नहीं, आज ही।'

वाह, तुम तो जब मन हो तभी।'

'मतलब ?—इसके लिए आप अपना पर्स न खोलियेगा। पैसे से ले जाने में आपको·····'

× × ×

'नहीं ,नहीं उस आदमी को जो खाली हाथ लौटा दिया तो बड़ा अच्छा लगा। भीतर आकर कुछ ले जाते तो क्या होता ? आपका खज़ाना खाली हो गया है, इस बात का ढिंढोरा पीटने की क्या जरूरत थी ? बेचारा आशा लगाकर आया होगा कि बड़ा दरबार है—कुछ न कुछ मिल ही जायगा। मगर उसको हमारी हालत क्या मालूम कि यह दिखावा...।'

× × ×

'एक दिन भी आपका मुँह ज़रा खिला हुआ नहीं रहता है क्यों ? मेरा कौन-सा पाप है, पता नहीं। मैं आपको क्या कमी कर रही हूँ ?'

× × ×

पहले के दोनो अस्त्र तो मामूली थे—मगर यह आखिरी अस्त्र ब्रह्मास्त्र निकला। अब 'बाबू' की समझ में आया कि इस तरह काम

न चलेगा—कुछ करना चाहिये। इस तरह जीवन बिताना संभव नहीं है।

मगर क्या किया जाय? पत्नी को मायके भेज दे? मगर क्या कहकर? दुनिया क्या कहेगी? लोग कहेंगे—अरे, चाहे जिसके पास चार पैसे हो। चुपचाप बच्चों के साथ रूखा-सूखा खाकर पड़े रहो। यह सब शोर-गुल अच्छा नहीं लगता। और असल में ये सब बातें लोगों को बताकर बची-खुची इज्जत भी गवाँना क्यों? या पत्नी से ही कह दे कि देखो, तुम्हारा इस तरह हुकूमत चलाना मुझे अच्छा नहीं लगता। मान लिया कि उसके पास चार पैसे हैं, मगर इससे क्या? ज़रा विनम्र होकर ही रहेगी तो क्या होगा? मगर उससे फायदा? पुराना ढंग छोड़कर वह इस पर दया करना, तरस खाना, शुरू कर दे तब? उसकी बेवकूफी-भरी डाँट-फटकार तो वह किसी तरह सह भी लेता है, मगर दया-दृष्टि से देखने पर तो ठहरना मुश्किल होगा!

सच कहा जाय तो उसका (पत्नी का) भी क्या अपराध है? मगर इस परिस्थिति में रहकर उसके जूते हाथ का शासन...

घर छोड़ देने का निश्चय किया 'बाबू' ने। लड़कपन में बुद्ध चरित पढ़ रखा था। इसलिए शाक्य मुनि की तरह आधी रात को मुहूर्त निश्चय किया। दरवाजा पार करने के पहले स्त्री और बच्चों का चुम्बन किया। इतिहास दोहराया गया।—नहीं, अपनी वस्तु को छोड़ देने की ममता...

चिट्ठी भी लिखकर नहीं छोड़ी कि जा रहा हूँ। उसको खुद भी तो नहीं मालूम था कि वह कहाँ जा रहा है। सवेरा होते-होते उसने आगे-

वाला टीला पार किया और चलते-चलते दोपहर को एक गाँव में पहुँचा—जिसका नाम उसे भी न मालूम था। पास में धेला भी न था। खैर वह तो अभ्यस्त-राग-सा था। मगर पेट का सवाल...

रास्ते में जो पहला घर मिला उसी के दरवाजे पर खड़ा हो गया। मगर समझ में न आया कि क्या कहे और कैसे बुलाये! दरवाजे पर यों ही बैठ गया। इतने में एक दस साल की लड़की इमली के बीज से भरा डब्बा झनझनाती आई। नये आदमी को बैठा देखा तो रुक गई और बोली—'बाबू जी 'मणि' * पहन चुके हैं।—बुलाऊँ क्या?'

'नहीं बेटी!'

'तब फिर क्या चाहिये?'

'भोजन।'

'ठहरो, अम्माँ से कहती हूँ।'—कहकर लड़की अन्दर चली गई। दूसरे छन भीतर से एक वयस्का बाहर झाँककर बोली—कौन हो बेटा?

'मैं एक ब्राह्मण हूँ।'

'तो भीतर आओ। 'मड़ि' पहनो।

बाबू ने कुर्त्ता उतारा। चादर छाँटी और पहन ली। फिर पंक्ति में जा बैठा। तब तक गृहस्थ का भोजन आधा हो चुका था।

'कहाँ मकान है?'—पूछा उसने। बाबू ने दूसरे जिले के एक गाँव का नाम बता दिया।

* 'मड़ि' भोजन के वक्त पहना जानेवाला पवित्र वस्त्र होता है। प्रायः रेशमी होता है अथवा भिगोया हुआ सूती।

बाबू कुछ देर तक सोचता रहा। इस बार झूठ न कह सका—इसके पहले नाटक में काम करता था।

मालूम नहीं, गृहस्थ ने क्या समझा—इसके बाद कुछ न बोला।

हाथ-मुँह धोने के बाद बाबू ने विदा माँगी। गृहस्वामी सिर हिलाकर रह गया। मगर गृहस्वामिनी ने एक छन ठहरने को कहकर पति को इशारे से कमरे में बुलाया। बाबू को उनकी आवाज़ सुनाई पड़ी—भले आदमी हैं, पान-सुपारी दिये बिना ही भेज रहे हैं। बेचारा भले घर का मालूम पड़ता है। उसको दुःख पड़ा है तभी तो हमारे यहाँ हाथ फैलाने आया है। जो कुछ भी फूल-पात मिले...कुछ नहीं है?... हाँ, आपके पास रहा ही कब है? यह लीजिये, यह रुपया दे दीजिये।... आपके बटुआ का नहीं है। आपने तो नहीं ही कर दिया न? वह फिर बोली—एक दमड़ी भी हाथ से कभी नहीं निकलता। मगर गले में 'सूता' * बाँधा है न? इसी अधिकार से मेरे दान-पुण्य में आधा बाँटने को हरदम तैयार रहते हैं।

उसके बाद की बातें उन दोनों की हँसी में मिल गईं। गृहस्वामी ने खिले हुए मुँह से बाहर आकर बाबू को पान-सुपारी दिया।

सिर्फ सुपारी को ही मुँह में रखकर पान से रुपए को दबाये हुए बाबू धूप में ही चलने लगा। उस समय उसका मन आठ बजे रात के वक्त सेंट्रल स्टेशन (मद्रास) जैसा कोलाहलमय था। यह दम्पति भी तो उसी का तरह हैं। हो सकता है। शायद वह गृहस्थ बाबू की

* दक्षिणी शादी में प्रधान भाग माना जाता है वर का वधू के गले में एक धागा बाँधना—उसको मंगलसूत्र या तालो कहते हैं। सिन्दूर की तरह यह सौभाग्य-चिन्ह है।

तरह न हो ? या उसमें स्वाभिमान नहीं होगा। नहीं तो भला इतनी खुशी से औरत की बात सह लेता। क्या इस दुनिया में आँखें खोलकर न देखने लायक बातों को देखते हुए भी न देखने में ही सुख है ?—शायद हो।

बाबू थककर सड़क के किनारे एक पेड़ की जड़ पर सिर रखकर सो गया। जब मैना और गौरैया ने ऊपर से पीपल के फल गिराये तो उसकी नींद टूटी। उठकर देखा तो शाम हो गई है। घायल मन अभी तक भरा नहीं था। मगर भार फिर भी कुछ कम-सा मालूम पड़ता था।

दस गज चला होगा कि उत्तर हिन्दुस्तानी भिक्षुक-दम्पति (Street singer) आते दिखाई पड़े। मर्द बायें हाथ में बेला लिये, दाहिने हाथ से एक लड़के को पकड़े कुछ बोलता-समझता खींच रहा था। लड़का ज़िद कर रहा था, चलना नहीं चाहता था। बगल में युवती पूर्ण गर्भवती अलसगति से गोद की बच्ची को चुप करने की कोशिश कर रही थी। दोनों हँसते-झूमते आ रहे थे।

'बाबू' को देखकर वे रुक गये। उनके रुकते ही बाबू ने अपने हाथ का रुपया बच्चे को दे दिया और उस दम्पति को नमस्कार कर तीर की तरह एक तरफ को चल दिया।

'पागल है।'

'नहीं, भगवान है।'

हवा उन लोगों की ये बातें उड़ाकर बाबू के कानों में डाल आई यह सुनते ही घनीभूत मेघ-पुंज ढह गये और बिजली चमकने लगी···

एक गोरा कार से नीचे कूदा। चोट से घायल बेहोश आदमी को ड्राइवर ने अन्दर रखा। फिर हास्पिटल रोड पर गाड़ी जोर से दौड़ पड़ी।

खोह में से बाहर आने की तरह अन्धकार-शिलाओं को ठेलकर बाबू की बेहोशी दूर होने लगी।

नर्स हाथ में कुछ चीज़ें लिये पैर के पास खड़ी थी। डाक्टर उसके ऊपर झुककर, बहुत धीरे से, विनम्रता के साथ बोला—हाँ, हाँ, ठीक है, क्या चाहिये? तुमको क्या चाहिये?

'चाँदनी में तैरनेवाले हंस'

डाक्टर ने नर्स की ओर देखा। उसने निराशा से आँखें नीची कर लीं।

मगर, उन बेचारों को क्या मालूम कि बेहोश होने पर भी उसकी अन्तर्वाणी अर्थ-युक्त अभिलाषा हो कर रही थी!

वेंकन्ना

'करुणकुमार'

[श्री करुणकुमार' पहले कहानी लेखक हैं, जिन्होंने साहित्य में पीड़ित तथा शोषित वर्ग की आवाज़ ऊँची की है। इस वर्ग के आपने कुछ बड़े मार्मिक और सत्य चित्र तेलुगू साहित्य में उपस्थित किये हैं। आपके पात्र काल्पनिक नहीं होते, बल्कि जीते-जागते, हँसते-बोलते गरीब प्राणी होते हैं, जिनके बीच रहने का अवसर श्री'करुणकुमार' को प्राप्त है।

मूल तेलुगू में आपकी भाषा विषय के अनुरूप ही ग्रामीणों की भाषा होती है। हाल में ही आपकी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। आपकी कहानियों में 'कहयाकालवा', 'कोत्त चेप्पुलु' आदि बड़ी करुण हैं। 'वेंकन्ना' भी कम करुण नहीं है—और यह बहुत ऊँची भी उठी है।]

वेंकन्ना

'अर्जी, राघवय्या, रेड्डीजी ने मालगुजारी ले आने को कहा है जी !'—कहते हुए ग्राम मुनसिफ़ के दो सरकारी नौकर सवेरा होते ही दरवाजे पर आकर खड़े हो गये।

राघवय्या सत्तर साल का बूढ़ा लागर आदमी है। अभी तक उसने खाट नहीं छोड़ी—मजे की नींद ले रहा था।

'अरे, दो दिन ज़रा धीरज धरो। लड़का आयगा तो कर्णम * के पास जाकर हिसाब देखकर पैसा दे देगा।'—चारपाई पर लेटे ही लेटे काँपते हुए गले से राघवय्या ने जवाब दिया।

रेड्डी मानते नहीं हैं जी! आज तीसरा किश्त हो ही जाना चाहिये। रुक नहीं सकते—कहते हैं मुनसिफ और कर्णम भी। रुपया न मिले तो बैल खोल लाने को कहता है, रेड्डी ने (मुनसिफ)'—कहकर दोनों सिपाही हाथ में लाठियाँ लिये दरवाजे पर खड़े हो गये।

'बैल खोल लाने को कहा है'—यह आवाज़ कान में पड़ते ही राघवय्या चौंक पड़ा। उसकी सत्तर साल की उम्र हुई। आज तक कभी उसने वैसी लघुता की बात नहीं सुनी थी। हजार, पन्द्रह सौ मालगुजारी देनेवाले बड़े-बड़े रेड्डी चूक जाँय तो चूक जाँय, मगर राघवय्या छोटा-सा किसान होने पर भी अपनी जिम्मेदारी समझनेवाला आदमी था और आज तक बिना किसी जोर-जबर्दस्ती के हर एक किश्त का पैसा मुनसिफ को देकर रसीद लेता आ रहा था। अपने वक्त में वह दूसरों को सिखलाता था, दूसरों को कहने का मौक़ा उसने नहीं दिया था। मगर आज उसे इस उलझन में फँसना पड़ा। आज उसे मुनसिफ के नौकर की यह बात सुननी पड़ी—'रेड्डी ने बैल खोल लाने को कहा है।'

* मद्रास प्रांत के गाँवों में दो सरकारी नौकर होते हैं—ग्राम-मुनसिफ और कर्णम। कर्णम हिसाब-किताब, नाप-जोख रखता है और मुनसिफ तहसील-वसूल करता है। एक तरह से मुनसिफ क्रिमिनल और कर्णम सिविल आफिसर होता है। इन लोगों के अधीन चार-छः नौकर रहते हैं। ये ही लोग मालगुजारी वसूल कर सरकार के खजा में जमा करते हैं। ग्राम मुनसिफ का बड़ा रोब रहता है।

उसके बचे-खुचे ऐश्वर्य में यही घर का पैदा हुआ एक बैल है। उसके साथ एक भैंसे की जोड़ी लगाकर किसी तरह राघवय्या उस चार एकड़ जमीन को जोतता-बोता है। उसने उस बैल को अपने इकलौते बेटे रमणय्या के समान ही प्यार से पाला है। उसी को रेड्डी जब्त करना चाहता है। वाह रे दुर्भाग्य!

उसकी आँखों में आँसू भर आये। बथान में खूँटे से बँधा हुआ बैल आँखों में फिरने लगा। राघवय्या ने इतने दिनों से किसी न किसी तरह अपनी इज्जत-आबरू बचाई है। आज क्या वह अपना बैल दस आदमियों की आँखों के सामने नीलाम होने देगा? उससे बेहतर तो अपना सिर देना समझेगा! उससे बेहतर तो उस बैल को किसी कसाई के हाथ किसी भी दाम पर बेचकर सरकारी मालगुजारी दे देना समझेगा वह।

मन में रोष पैदा हुआ तो उसकी आँखें लाल हो गईं। पलकों पर गिरी हुई सफेद भौंहें उसने ऊपर को तानीं। झुर्रियाँ पड़े हुए चेहरे में जलती हुई आँखों में बची हुई दो बूँदें नीचे गिर पड़ीं। भौंहें तानते ही ललाट पर साँप के बच्चों की तरह तीन झुर्रियाँ स्पष्ट उभर आईं।

राघवय्या बोला—अरे, दस बजे तक मालगुजारी पहुँच जायगी। कहो रेड्डी से। उस समय तक न पहुँचे तो जैसा जी में आये करना। बैल खोलकर ले जाना। जाकर रेड्डी से कहो कि मैंने कहा है।

वे लोग चले गये।

'क्या है जी! बैल ले जाने को कहते हो? क्या है?'—भीतर बर्त्तन माँजती हुई लक्ष्मम्मा ने बाहर आकर पति से पूछा।

'सरकारी रुपया न दिया जाय तो सरकारी नौकर चुप रहेगा ? मुनसिफ ने खबर भेजी है कि मालगुजारी जमा करोगे या बैल जब्त कर लूँ ?'

'अरे यह क्या ? क्या रेड्डी समझते हैं कि हम सरकारी माल-गुजारी नहीं देंगे ? कहाँ भागे जा रहे हैं ? सब लोग उन्हीं की तरह दुनिया में भाग्यवान ही हैं क्या ? एक दिन आगा-पीछा भी नहीं होता क्या ?'—कहती हुई लक्ष्मम्मा कोयला चबाने लगी।

'इसमें मुनसिफ का कसूर क्या है ? अपनी ड्यूटी के मुताबिक वह कर रहा है।'—राघवय्या ने कहा।

'इसलिए अपने जात-भाई के दरवाजे पर चपरासी भेजकर बैल जब्त करवायेगा ? इस साल उन खेतों में देखने को भी चार दाने नहीं हुए। मुनसिफ नहीं समझता है कि हम मालगुजारी कैसे चुकाएँगे ?'

'अरे, हमारा रोना जंगल का रोना है। क्यों बेकार दुःख करती हो ? और सब छूट जाय, मगर सरकार का बाकी नहीं छूट सकता है।'

'तुमने शुरू से ही इस तरह के उपदेश दे-देकर अपनी हालत ऐसी कर ली है। तुम मालगुजारी मत दो। चुप रहो। लड़के को गाँव से आने दो। कर्णम के पास जाकर हिसाब देखकर जो देना होगा दे आयगा।'

'पगली, दादा के आने तक ग्रहण रुका रहेगा ? सरकार को हमारी तकलीफों से कोई मतलब नहीं रहता, समझी ?'

'तो जो तुम्हारे मन आये कर लो'—अनखाती हुई भीतर चली गयी लक्ष्मम्मा।

असल में वह कभी पति की बातों के विरुद्ध न बोली थी, मगर अभी उसे भय था कि मुनसिफ गैर मुनासिब ढंग से रुपया ले रहा है। इसी लिए वह आक्रोशित होकर कुछ बोली। और पति पर ही वह जिम्मेदारी छोड़कर अन्दर चली गई।

(२)

अभी हफ्ता भर पहले पछाँही व्यापारी बैल बेचने के लिए उसी गाँव में आये थे।

राघवय्या का लड़का रमणय्या १० दिन हुए तम्बाकू बेचने उस पार गाँवों में गया है। मालूम नहीं वह कब तक लौटेगा। हफ्ते भर में लौट आने की आशा दिलाकर वह गया था मगर अभी तक नहीं लौटा। पर उसके आने तक भला मालगुजारी रुकी रहेगी? फिर राघवय्या रुपया लायेगा भी तो कहाँ से? उसने मुनसिफ को ख़बर दी है कि दस बजे तक वह रुपया दे देगा। अगर वैसा न हुआ तो मुनसिफ जरूर बैल जब्त करायेगा। अब तक उसी के कहने से मुनसिफ दो किश्त तक रुका रहा। मगर यह आखिरी किश्त है, अब रोका नहीं जा सकता, यह राघवय्या को मालूम है। दो किश्तों का रुपया और कर्णम की दस्तूरी—सब मिलाकर २०) के करीब होगा—यह कर्णम ने कहा था। इस साल की उपज से साल-भर पेट चलना ही मुश्किल है। कुछ बन्धक रखकर लायें तो क्या बन्धक रखें? औरत के गले में 'मंगल-सूत्र' * के सिवा और कुछ नहीं है। लड़का रहता तो किसी से

* सौभाग्य-चिन्ह।

पैंचा-हथफेर ले आता। वह बूढ़ा है। किसी के सामने जाकर हाथ पसारना भी बुरा मालूम होता है। अगर किसी महाजन के पास जाकर नोट लिखकर २५) लाये तो ला सकता है। मगर बालिग लड़के के रहते हुए अकेले हैण्डनोट लिखने से भी कोई न देगा। एक महाजन ने कहा कि दोनो मिलकर लिखो तो १) रुपए सैकड़ा ब्याज पर देंगे। मगर लड़का कहाँ है ?

मालगुजारी का प्रबन्ध वह न कर सका। बहुत सोचा। आख़िर उसने सोचा कि बेटे का जोड़ा जो पड़ा है, उसे बेंच दे। मगर उससे तो सात-आठ रुपए से ज्यादा न मिलेगा। इधर १५ दिन से वह पड़ोस का लड़का नहीं रहता है। बेचारे जानवर भी ठीक से चारा-पानी न मिलने से काँटा हो गये हैं। उस भैंसे को बेचना और रखना दोनो मुश्किल है। आखिर वही एक बैल है। उसे बेचने से आज-कल के दर से चालीस या पचास मिलने चाहियें। मगर व्यापारी लोग गरजू समझकर रुपए की चीज़ आठ आने में माँगते हैं। मालगुजारी न देने से भी मुनसिफ बैल जरूर जब्त कर लेगा। उस समय घर में उस बैल के सिवा कीमती और कोई चीज़ नहीं है। बैल को खोलकर ले जाने पर भी वह क्या करेगा ? और फिर नीलाम पर चढ़ाकर दस-पाँच में वे बेच देंगे तो उन्हें कौन रोकेगा ? मगर प्राण रहते सरकारी नौकर आकर उसके दरवाजे पर से बैल खोल ले जायँगे और वह देखता रहेगा ?— यह कैसे हो सकता है ? इससे तो बेहतर होगा कि बैल को चुपचाप बेचकर वह सरकारी बाकी चुका दे और इज्ज़त बचा ले। उसके वक्त में कितनी दौलत बर्बाद नहीं हुई ? उसके बाप के कितने जानवर खतम

नहीं हुए ? घर का पैदा हुआ बाछा है, नहीं तो इस पर भी इतनी ममता क्यों होती ? यह रहकर क्या उद्धार करेगा ? जैसे सब गया वैसे ही समझेंगे कि यह भी गया—इस तरह राघवय्या विचार करने लगा।

राघवय्या ने अपनी पत्नी से भी सलाह नहीं ली। पैर में जूते डाले और गाँव के बाहर जहाँ बैलों के व्यापारी डेरा डाले थे वहाँ गया। उनको घर बुला लाया। बैल दिखलाया। ५०) पर बात तै हो गई। हाथ में पैसा लेकर उसने बैल की गर्दन से रस्सी खोली और व्यापारियों के हाथ सौंप दिया। मगर दुःख का वेग रोक न सका। आँखों से प्रवाह जारी होगया। 'घर की लक्ष्मी चली जा रही है'—कहकर लक्ष्मम्मा चिल्ला उठी।

'हमारे कर्ज का प्रबन्ध होगया, चुप रहो'—राघवय्या ने उसे धीरज दिया।

'छोटे बच्चे की तरह इसको पाला। इसकी मा के बच्चे भी मेरी तरह हो नहीं बचते थे तो बालाजी वेंकटेश की मन्नत मानी। और इसका नाम 'वेंकन्ना' रखा। एक रमणय्या बेटा और दूसरा 'वेंकन्ना' बेटा समझा—हाय वेंकन्ना कहाँ गया ? मेरे हाथ का पानी अब नहीं लिखा था तुम्हारे भाग्य में ? जाते हो ? अब फिर नहीं दीख पड़ोगे ? तुमको छोड़कर मैं इस घर में कैसे रहूँ ? तुमको नहीं देखेगा तो रमणय्या क्या भला खाना खायगा, पानी पियेगा ?' लक्ष्मम्मा बैल की पीठ पर हाथ रखकर रोने लगी।

राघवय्या भीतर ही भीतर जल रहा था। वह पुरुष ठहरा। सो भी बड़ी उम्र का बूढ़ा, अनुभवी, कष्ट-सुख समझनेवाला ज्ञानी। वह

भी औरत की तरह रोने लगे तो कैसे बने ? 'ऋणानुबंध रूपेण पशु पत्नी सुतादयः'—बड़े लोगों की कही हुई कहावत उसे याद आई।

'इस जानवर पर तुमको इतनी ममता क्यों है ? अपना कर्ज अदा-कर वह अपने रास्ते जा रहा है—तुम चुप रहो'—औरत को धीरज देते हुए खुद भी राघवय्या ने जी कड़ा करने की कोशिश की।

व्यापारी लोग बैल की रस्सी पकड़कर खींचते हुए ले गये।

बिना बैल का सूना घर देखकर फिर लक्ष्मम्मा वहीं बैठकर रोने लगी। राघवय्या ने घर के अन्दर जाकर चुरुट' ‡ जलाया और दर-वाजे पर आकर दीवार से लगकर बैठ गया। दुःख-भार से कंपित अपने हृदय को वह स्वस्थ करने लगा। रमणय्या आकर शायद इसके लिए कहीं झगड़ा न करे उससे—उसे यह सन्देह हुआ। मगर फिर उसने सोचा—सिर का बोझ उतारने के लिए बेचा है—वह भी यह समझेगा तो क्या कहेगा ?

फिर गली में सरकारी सिपाही दिखाई पड़े।

'जाओ, कर्णम से लिखवा लाओ कि मुझे कितना देना होगा। रुपया तैयार है।'—राघवय्या ने उनसे कहा।

'कर्णम और मुनसिफ दोनों कचहरी में बैठे हैं, ज़रा तुम्हीं वहाँ तक चलकर हिसाब देखकर क्यों नहीं रुपया जमा कर देते ?'—नौकरों ने कहा।

अभी बाहर जाकर दस आदमियों को मुँह दिखाने में राघवय्या

‡ तम्बाकू का पत्ता मोड़कर चुरुट बनाकर देहात के लोग पीते हैं।

को शरम मालूम होगी। ग्रामाधिकारियों के पास जाने की और भी इच्छा नहीं हुई, सिर झुक गया था।

'अरे कहो कि मैंने कहा है—तो कर्णम हिसाब करके देगा। मेरा मिजाज अच्छा नहीं है। मैं अभी चलकर उतनी दूर आ नहीं सकता। चिट लिखा लाओ। पैसा तैयार है'—राघवय्या ने कहा।

कर्णम ने दो-तीन किश्त मालगुजारी का; बिना हुक्म के नये खेत में पानी ले जाने का जुर्माना-मालगुजारी, रोड्-सेस, अपनी जमाबन्दी की दस्तूरी, डी० पी० डब्लू० ओवरसीयर की दस्तूरी—वगैरह सब मिलाकर १९॥) का हिसाब करके कागज पर लिखकर भेजा। राघवय्या ने नौकरों के जरिये रुपए भेज दिये। बचा हुआ ३०।) सन्दूक में रख दिया।

उस दिन लक्ष्मम्मा ने दिन ढलने तक भी रसोई नहीं चढ़ाई। रोती हुई बैठी रही।

साँझ होने के कुछ देर पहले राघवय्या ने दो-चार कौर कंठ के नीचे उतारे। सबेरे नौ बजे बैल बेचने के बाद शाम तक उसको फिर बैल दिखाई न पड़ा तो उसका जी व्याकुल होने लगा। ज़रा अँधेरा हुआ तो गाँव के बाहर व्यापारियों के झुंड में मिले बैल को देख आया।

उसी रात को भोर होने के पहले ही व्यापारी लोग बैल हाँककर पच्छिम की ओर चले गये।

(३)

राघवय्या की आठ संतानें हुईं। मगर उसकी आखिरी अवस्था में बचे हुओं में एक बेटा रमणय्या और एक बेटी वेंकम्मा ही हैं। लड़की

सयानी हुई और अपने पति की गृहस्थी सँभालने गई। रमणय्या की उम्र अभी २५ साल की होगी। अभी हाल ही में उस पार मामा की लड़की से शादी की है। लेकिन वह लड़की अभी छोटी है। गौना नहीं हुआ है।

राघवय्या का बाप मरने के वक्त १६ एकड़ धनहर, ४ एकड़ गोचर भूमि, दो एकड़ बगीचा, बड़ा जलधर कुँआ, मकान, दो जोड़ी बैल, ४ दुधार पशु, वगैरह कुल मिलाकर सात-आठ हजार रुपए की सम्पत्ति राघवय्या को दे गया था। मगर उस सम्पत्ति के साथ अपना किया हुआ चार हज़ार कर्ज भी दिखा गया। राघवय्या जब उम्र में था तो उन सोलहों एकड़ पर खूब मेहनत करके उसकी आमदनी हर-साल महाजनों को कुछ न कुछ देकर कर्ज चुकाने की बड़ी कोशिश की। तकलीफें उठाईं। मगर उस समय वह बेचारा अकेला था। घर-गृहस्थी और खेती दोनो सम्हाल न सका। वैसे कम उम्र में ही भगवान ने उसे सन्तान का मुँह दिखाया था—अगर वे लड़के होते तो कम से कम गाय-भैंसों को चरा लाते: मगर लक्ष्मम्मा के हर दूसरे साल लड़की पैदा होती और सब मर-मर जातीं। आज उन लड़कियों में एक वेंकम्मा बची है।

चार हज़ार का कर्ज चुकाना मामूली काम तो है नहीं। पिता ने जरूरत के मुताबिक बारह आने, रुपया, सवा रुपए सैकड़े राक्षसी ब्याज पर कर्ज लिया था। उनमें एक साला, दो साला और तिसाला सूद जोड़े जानेवाले दस्तावेज और हैण्डनोट के सूद और असल मिलाने से हर साल पाप की तरह कर्ज दुगुना-तिगुना होता चला गया। अगर

अनाज बेचकर, लाल मिर्च बेचकर, घर के बढ़े हुए बछड़ों को बेचकर सौ-दो सौ जमा भी करता और महाजन को देता तो असल को कौन कहे सालाना सूद भी पूरा न पड़ता। इसके अलावा महाजन लोग भी जल्दी करने लगे कि उन्हें रुपया मिल जाना चाहिये। अब चार साल गुजरने के बाद जब कर्ज चार से छः हजार हो गया तो राघवय्या ने निश्चय कर लिया कि इस कर्ज-पिशाच से मुक्त होना चाहिये। बस, धनहर से १० एकड़ और दो एकड़ बगीचा, बारह एकड़ जमीन, जो दाम मिला उसी दाम पर बेचकर राघवय्या ने सब कर्ज चुका दिया। अब उसके पास बचा है—चार एकड़ धनहर और चार एकड़ गोचर-भूमि, बस।

मेहनत करे तो धानवाली चारो एकड़ अच्छी जमीन है। कम से-कम फी एकड़ दस बोरा धान पैदा हो तो सरकार की मालगुजारी, खेती का खर्च वगैरह काटकर पेट चल जायगा। मगर राघवय्या के भाग्य के साथ-साथ इधर चार-पाँच साल से अनाज की दर गिर गई है, यही नहीं, चार साल पहले जो भारी तूफान आया था, उससे न मालूम क्यों तालाब में समय पर पानी नहीं आता है। इसलिए फसल ठीक से होती नहीं है। कितना भी खाद डाले, कितना भी जोते, रात दिन खेत में ही पड़ा रहे, मगर फी एकड़ पाँच से सात बोरा तक अनाज झरना मुश्किल हो जाता है। इधर यह आमदनी काफी नहीं हुई तो रमणय्या ने तम्बाकू का व्यापार शुरू किया है। छुट्टी के दिनों में जब खेती-बारी का काम नहीं रहता, वह दस रुपए का तम्बाकू खरीदता है और उस पार जाकर बेच आता है। अपना पेट खर्च काटकर चार

रुपए बचते हैं तो घर लाता है। परिश्रम से वह डरता नहीं है, भरी जवानी में है। मा बाप पर जान देता है। मा-बाप भी रमण्य्या को आँखों की पुतली ही समझते हैं।

सिर पर तम्बाकू की गठरी रखकर गये उसे दस दिन हो गये। रमण्य्या कभी उस पार जाता भी तो हफ़्ते भर से ज्यादा नहीं ठहरता। मगर इस बार मालूम नहीं, दस दिन बीत गये और वह घर नहीं लौटा।

'वेंकन्ना' को बेचे चार दिन हो गये। छः दिन गुजरे। उसका वियोग अब राघवय्या और लक्ष्मम्मा के लिए मामूली बात हो गयी। बच्चा अभी तक नहीं आया—यही फिक्र बूढ़े माता-पिता को खाये डाल रही हैं। वेंकन्ना ने जिस घर को सूना कर दिया, उसमें अगर रमण्य्या भी होता तो उनको एक तरह की खुशी होती।

सातवें दिन सवेरे नौ बजे रमण्य्या घर पहुँचा। बाहर के ओसारे में खाट पर सोया था राघवय्या। लक्ष्मम्मा अन्दर हंडा-कुंडा धोकर नाद में डाल रही थी। रमण्य्या के पैरों की आहट सुनते ही राघवय्या झट से उठ बैठा।

'इस बार इतने दिन क्यों लगा दिये बेटा ?'

'न मालूम क्यों इस बार देर हो गई। कुछ दूर जाने पर सोचा कि इतनी दूर आया ही हूँ तो मामा के घर भी हो आऊँ। उन लोगों को भी देख आया हूँ।'—रमण्य्या ने जवाब दिया।

'बेटे की बात कान में पड़ते ही मा द्वार पर आई।

'क्या मामा के घर से हो आये ? सब लोग खुशी से हैं न ?'—उसने पूछा।

'हाँ, सब लोग अच्छे ही हैं। इधर हफ्ते भर से मामा चलते-फिरते नहीं थे। बैल ने पैर पर खुर रख दिया था। वही फूल गया है।'—जवाब दिया रमणय्या ने।

'वाह रे, देखो, उन लोगों ने यह खबर भी नहीं दी न? एक बार देख भी तो आती'—लक्ष्मम्मा ने कहा।

'अभी कुछ अच्छा है। किसी हजाम से मालिश करवाते हैं। अब ज़रा पैर जमीन पर रख सके हैं।'

'वाह, बड़ा अच्छा है।'—कहती हुई लक्ष्मम्मा अन्दर चली गई।

'दिन चढ़ता जा रहा है। हाथ-मुँह धोकर खाओ-पीओ बेटा! मुँह सूखा जा रहा है।'—बाप ने कहा।

सिर से बँधी चादर उतारकर उसने खाट पर रखी। बाल खोलकर दोनों हाथों से झाड़ा और फिर बाँध लिया। मुँह धोने के लिए पिछवाड़े में कुएँ के पास गया। फिर बैल की बात याद आई तो पशुओं को देखने के लिए बथान की ओर चला। सिर्फ पाड़ा ही खूँटे से बँधा था। बैल नहीं था। भैंस का बच्चा बैठा पागुर कर रहा था। भैंस खेत गई होगी शायद। मगर बैल क्या हुआ? उसे कुछ सन्देह हुआ।

कुँए के पास हाथ-मुँह धोकर घर में आते हुए उसने कहा मा से—आज बैल को भी खेत ही भेज दिया है क्या?

'खेत नहीं खाक-पत्थर नहीं'—कहकर उसने एक उसाँस लिया।

'तब क्या हुआ बैल?'

'पछाँही फेरीवाले आये थे, उन्हीं के हाथ ५०) रुपए को तुम्हारे

बाप ने बेच दिया। क्या करने कहते हो मुझे बेटा ?' —चूल्हे के पास बैठे हुए उसने आँसू की बूँदें गिराईं।

रमणय्या की मानो कमर पर लाठी लगी। बैल बेचना क्यों—उसकी समझ में न आया।

दौड़ा दरवाजे पर गया। बाप से पूछा—बाबू ! बैल क्यों बेच दिया ?

'सरकारी मालगुजारी के वास्ते रेड्डी ने नहीं माना। तुम थे नहीं। मैं बूढ़ा उठकर कहीं जा-आ नहीं सकता।'—राघवय्या ने कहना चाहा।

रमणय्या आंखें फाड़कर चिल्लाकर बोला—मालगुजारी—मालगुजारी—मालगुजारी—क्या मालगुजारी ? बाप रे बाप ! इस साल खेत में एक छटाँक अनाज पैदा नहीं हुआ और मालगुजारी ! कर्णम ने तो मुझसे कहा था कि इस साल कुछ छूट देंगे। और कहाँ से मालगुजारी आई ?

'मुझे क्या मालूम ? रेड्डी और कर्णम ने मिलकर नौकरों को घर पर भेजा कि २०) रुपए जमा करोगे या बैल जब्त करवाओगे। भला बताओ मैं क्या करता ?

'इससे ? मेरे आने तक ठहरते भी तो। भला सोने-सा बैल बेच लेने को किसने राय दी तुमको ?

'कहा बेटा मैंने कि दो दिन ठहरो, लड़का आ जायगा। आरजू की। मगर वे लोग मेरी बातें कब सुनने लगे ?'

'अरे रे ! क्या किया तुमने बाबू ! भला मुँह का आहार कोई इस तरह बर्बाद करता है ? तुमको क्या जल्दी पड़ी थी कि मेरे आये बिना ही हाथी जैसा बैल बेच दिया ?'—रमणय्या धम से ज़मीन पर गिर गया।

'बेटा, हमारा उसका कर्ज सध गया था। बच्चे की तरह आठ साल तक पाला था उसको। क्या फायदा ? बैल बेचने तक रेड्डी ने भला दम लिया—दम लेने दिया ? वह भी हमारी तरह किसान ही तो है; मगर क्या फायदा। हमारा अभाग्य !'—लक्ष्मम्मा कहकर रोने लगी।

'नहीं, तुमको ऐसी सलाह किसने दी ? हाय ! हाय ! उसी को आधार करके चार एकड़ जोतता-बोता था ? सोना, सोना ही तो था। प्राण की तरह पाला था उसे। चौपट कर दिया तुमने मेरे बैल को।'—रमणय्या बिलख-बिलखकर रोने लगा।

'बेटा, चुप रहो ! चुप रहो ! उसका हमारा कर्ज था सो खतम हो गया। मैं इसी तरह एक हफ्ते से रो रही हूँ। तुम्हारा बाप भी क्या करे ? इतनी उमर बीती, आज सरकारी नौकर आकर बैल नीलाम करें यह उससे देखा न गया ! आखिर को वह बैल बेचकर बकाया चुकाना पड़ा। उठो रमणय्या चुप रहो बेटा !'

रमणय्या को हिचकियाँ आने लगीं।

'वह जानवर था तो क्या ? पशु-देह धारण करने लायक थोड़े ही था ? बिलकुल बच्चे की तरह ! कभी किसी पर सिर भी हिलाया न होगा ! कभी पूँछ या पैर न मारा होगा किसी को। साधु था। धर्मराज ! बात समझनेवाला जानवर। बालाजी वेंकटेश ही मानो मेरे घर आये थे। अपने घर में पैदा हुआ बच्चा है, अपने ही घर पर मिट्टी उठ जायगी, समझा था। उसके भाग्य में सुख नहीं लिखा था···'

'·········'

'उन पच्छाँही लोगों के हाथ में पड़ा है। पता नहीं उसके भाग्य

में क्या लिखा है ! किस कसाई के हाथ में जायगा बेचारा। कौन जाने ! सोचता हूँ तो कलेजा टुकड़े हो जाता है ! इतने दिनों तक उसने अपनी हड्डी, अपना चमड़ा, अपनी ताक़त सब कुछ हमको दिया। मगर हमने उसके साथ दगा किया। हम आदमी हैं तो क्या ? हजार जन्म में भी उसका ऋण चुका सकेंगे ?'—कहती हुई लक्ष्मम्मा आँसू पोछने लगी।

खाट पर सोया राघवय्या भी नाक साफ करने और आँखें पोंछने लगा।

'मेरे वेंकन्ना। हाय रे कहाँ गये ? अब मुझे नहीं दीख पड़ोगे क्या ? पन्द्रह दिन पहले देखा था, वही आखिरी देखना हो गया ?' कह कर रमणय्या जोर से रोने लगा।

'रमणा, तुम पागल हो गये क्या ? चुप रहो। क्या पागलपन कर रहे हो ! कहा कि दो दिन ठहरो। लड़का आ जायगा। मगर कर्णम मुनसिफ ने एक न सुनी। मानो बड़ा भारी पहाड़ टूट पड़ेगा दो दिन ठहरने से ! क्या किया जाय ! हम लोगों के रोने से क्या होगा ? ज़रा उनको सोचना चाहिये। उठो बेटा, बासी भात खा लो, उठो। सात-आठ दिन से वक्त पर खाना-पीना मिला नहीं होगा। सूख गये हो !'—मा ने धीरज दिया।

रमणय्या को दुःख के बदले अब रोष आने लगा। ये कर्णम मुनसिफ दो दिन ठहर जाते तो उसका बैल हाथ से न जाता। दोनों के ऊपर उसे जोरों का गुस्सा आया। उनसे झगड़ा तो नहीं कर सकता। मगर उनके मुँह पर चार खरी-खोटी सुनाकर अपनी आग तो शान्त

कर सकता है ! उसको जोश आया। गरमी आई शरीर में। उसी आवेश में उठ खड़ा हुआ और बोला—जाकर चार बातें पूछता हूँ—कर्णम मुनसिफ से—ठहरो।'—वह चल पड़ा।

'बेटा, तुम जल्दी मत करो। मेरी बात सुनो। अधिकारी अफसर लोगों से झगड़ा मत करो। क्योंकि काम तो उन्हीं से पड़ता है। ज़रा ठहरो ! जल्दी मत करो ! हमारे भाग्य के कर्त्ता-धर्त्ता वही लोग हैं।'—बाप ने रोका।

'मैं कुछ झगड़ा नहीं करने जा रहा हूँ। वह मालगुजारी क्या है ? वह हिसाब कैसा है, वही सब जरा देख आऊँ। देखूँ कि बीस रुपए और कहाँ से बाकी निकले। उतनी मालगुजारी तो मैंने कभी दी ही नहीं है।'—रमणय्या बाहर आया।

रमणय्या सीधे ग्राम-कचहरी में पहुँचा। कर्णम, मुनसिफ दोनों वसूली में लगे हुए थे। और दो-चार रैय्यत हिसाब-किताब देख-दिखा रहे थे।

'क्यों जी मुनसिफ, तुमको सरकार ने ओहदा दिया है तो हम जैसे लोगों की गर्दन काट दोगे ?'—रमणय्या ने जोर से पूछा।

मुनसिफ ने दिल्लगी की—गर्दन काट देने से सरकार फाँसी पर चढ़ा देगी।

'सो नहीं, मालगुजारी बाकी ही थी तो जब मैं घर पर नहीं था, तभी देखकर बूढ़े को सताकर, रुलाकर उससे बैल बिकवाओगे ? तुम किसान नहीं हो ? तुम खेती नहीं करते हो ? तुम बैल नहीं पालते हो ?'

'हाँ जी है, तो ऐसा ही ? मैंने तुम्हारे बाप से जबर्दस्ती बैल बिकवाया।'

'रुपया न देने से बैल जब्त करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे, इस तरह की खबरें भेजने का मतलब ?'

'सरकारी रुपया न देने से जब्त नहीं करेंगे तो क्या प्यार करेंगे ?'

'मैं तो आ ही रहा था। दो दिन ठहर जाते तो सरकार गला दबा देती क्या ?'

'सब वादे ही करते चले जाँय तो फिर काम कैसे चले ?'

'आखिर तुम सब लोगों ने मिलकर बैल का नाश कर ही डाला न? हमारे जैसे गरीबों को इस तरह सताते हो, इससे तुम लोगों का भला नहीं होगा। वह एक बैल था, वह भी चौपट हो गया। अब मैं खेती किससे करूँ, आप लोग ही बताइये।'—वहाँ पर जमा चार-पाँच गृहस्थों की ओर देखकर राघवय्या ने कहा।

रमणय्या का सीधापन देखकर वहाँ इकट्ठा हुए किसानों को ही नहीं; बल्कि मुनसिफ, कर्णम को भी हँसी आये बिना न रही। उसने पूछा—

'हँसते क्यों हैं जी! बूढ़े के पास से २०) रुपए जो आपने लिए हैं, सो किस हिसाब से! उतनी मालगुजारी कहाँ से आई ?'

'सो कर्णम से पूछकर हिसाब कर लो।' - रेड्डी ने कहा।

'क्यों जो, दीवानजी! तुम तो हर साल हमारे पास से दस्तूरी यह-वह लेते ही रहते हो। भला इतनी मालगुजारी कहाँ से आई ?' —पूछा कर्णम से रमणय्या ने।

कर्णम मुस्कराया—अरे, तुम्हारा जो चार एकड़ धान का खेत है, उसकी मालगुजारी बाईस रुपए देने की जरूरत नहीं है क्या ?

'राम-राम, अबकी उस खेत से चुटकी भर दाना आँख नहीं देखा। सिर्फ खोखला दाना काटकर ले आये थे। तुमने भी तो जाँच की थी। उस वक्त तो कहा था कि 'नहीं उपजा' ऐसा लिखकर मालगुजारी में छूट दिलायेंगे।'

'कहा था सो सही। तुम्हारे नम्बर में ३॥ साढ़े तीन एकड़ में कुछ पैदावार नहीं हुई, सो भी ठीक है। मगर आधे एकड़ में तो अच्छी पैदावार हुई?'

'तो चार एकड़ में आधा एकड़ उपजे भी तो क्या चारो एकड़ की मालगुजारी देनी चाहिये?'

'और क्या।'

'यह क्या अन्याय है?'

'सरकार पूरी-पूरी छूट देती है, अथवा नहीं देती है। टुकड़े करके किसी नम्बर पर नहीं देती।'

'वह टुकड़ा भी क्या उपजा जी! मजदूरी के लिए भी काफी नहीं हुआ।'

'मगर मैं क्या करूँ? मैंने तो रिपोर्ट में यही लिखा था कि कुल मिलाकर एक आना पैदावार हुई। मगर तहसीलदार ने नहीं माना। आधे एकड़ की फसल देखकर उसका मन फिर गया और उसने दो आना लगा दिया। बस, सब पोंछ-पाँछकर खतम।'

'तो दो आना पैदावार हो तो मालगुजारी में मुजरा नहीं देते हैं?'

'ऊँ हूँ! दो आने के भीतर ही रहना चाहिये पैदावार मोजरा के लिए। और तुम्हारे खेत के आजू-बाजू में कुछ अच्छी फसल हुई

यह तहसीलदार लिखकर ले गया है। फिर जब सब की पैदावार अच्छी हुई और बीच में तुम्हारी अच्छी नहीं हुई तो वह कसूर तुम्हारा हुआ, सरकार का नहीं। इसलिए तुम्हारा केस खारिज हो गया। मगर यह सब...तुमको क्या मालूम ?'

'कैसी वेइन्साफी है ! अच्छा मान लो तुम्हारी ही बात। धनहर की मालगुजारी साढ़े बाईस रुपये ही सही। उसमें पहले के दो किश्तों में ग्यारह रुपए दिये तो अब बाकी बीस कहाँ से आये ?'

'उस बलुआही खेत में जो तुमने इस साल पानी लिया सो भूल गये क्या ?'

'उस पर कितना पड़ा है ?'

'चार आने कम सात !'

'क्या दो सेर धान का बीज छींटा, उसके लिए सात रुपया ? मालूम पड़ता है तुम हमारा सत्यानाश कर देना चाहते हो !'

'अरे वह जमीन तो धनहर नहीं है ! उसमें पानी ले जाने के लिए साढ़े पाँच रुपए जुर्माना लगाया है। जुर्माना और मालगुजारी दोनों मिलाकर पौने सात हुए।'

'यह क्या ? बाप रे बाप। भला, सेर भर बीज के वास्ते धान छींटा और सात रुपये। न अब इस गाँव में रहना मुश्किल है। घर-द्वार उठाकर कहीं ले जाना चाहिये।'—रमण्या अचरज से मुँह बाये रह गया।

वहाँ बैठे और किसान जो यह सब शुरू से देख रहे थे वे खिल खिलाकर हँसने लगे।

'हम लोग इसी तरह सुबह से रो रहे हैं बेटा। हम लोगों की

दशा भगवान ही जानते होंगे। हम लोगों को भी किसी को पाँच, किसी को दस जुर्माना हुआ है। पता नहीं धनहर का रेट, तो सूखा का रेट, क्या दुगुना, तिगुना—क्या-क्या दीवानजी कह रहे हैं। मगर उनकी बातें हमारे समझ में आयें तब तो! सबेरे से परेशान हो रहे हैं। पता नहीं चलता कि कितनी-कितनी मालगुजारी दें। किससे जाकर अरज करें सो भी पता नहीं चलता है।'—एक बूढ़े किसान ने रमण्या से कहा।

'हाँजी, गुजिस्ता साल सब बड़े-बड़े रैयत आपस में मुँह फुलाये रहे। ओवरसीयर की दस्तूरी नहीं दी। बस, उसने ऊपर लिख दिया इस गाँव में ज्यादा छूट देने की जरूरत नहीं है। बस सब की पूँछ कट गई। फिर मुझे क्या कहते हो?'—पटवारी (कर्णम) ने कहा।

'दीवानजी, जैसे मन आये वैसे रुलाइये हम लोगों को। हम लोगों को यह सब भीतरी बातें क्या मालूम? हम लोग तो जानवर हैं। किस-किस के लिए रोयें। उधर सोने जैसा बैल मिट्टी में मिल गया उसके लिए रोयें या इधर जुर्माने के लिए? छिः इस गाँव में जीने से कहीं बेहतर है—एक घँट ज़हर पीकर मर जाना। मारिये—जैसे मन आये कीजिये। कर्णम, मुनसिफ को मा-बाप समझकर हम लोग विश्वास किये बैठे हैं, आपके जो मन आये कीजिये। आप लोगों को रोकेगा ही कौन? मगर इस तरह भोथरे छुरे से गर्दन काटने की बनिस्बत भेड़-बकरी की तरह एक ही बार साफ क्यों नहीं कर देते? छुट्टी।'—न-जाने और क्या इसी तरह बकता हुआ रमण्या घर की ओर चला गया।

(४)

बहुत प्रयत्न करने पर भी रमणय्या के मन से वेंकन्ना उतरता नहीं है। वह सोच रहा है कि पछाँही व्यापारियों का रास्ता मालूम कर पीछा करे और किसी तरह उनके पास पहुँचकर उनका रुपया वापिस कर दे और बैल ले आये। मगर जो बैल उनके हाथ लग गया, भला वे उसे लौटायेंगे ? मगर चार रुपया फायदा दिखाया जाय तो क्यों नहीं देंगे ? आखिर वे व्यापारी ही तो हैं। खैर, वे बैल न भी लौटायें तो उनका पता लगाकर एक बार भर आँख बैल को देख तो आ सकता है वह। रमणय्या ने बाप से पूछा कि उन लोगों का घर कहाँ है ?

'वह उस पहाड़ के उस पार—कोई गाँव कहा था—मुझे याद नहीं।'—बाप ने जवाब दिया।

रमणय्या ने गाँव में जाकर कई आदमियों से बैल के व्यापारियों के बारे में पूछताछ की। किसी ने कहा कि उन्हें मालूम नहीं, किसी ने गाँव मालूम होने पर भी कहा कि अब वे भला तुमको मिलेंगे ? कहाँ के कहाँ चले गये होंगे। तो किसी ने बताया—अरे, अब उनका पीछा करना बेकार है ! वे पहाड़ पार कर गये होंगे। अब बैल तुमको मिल चुका। इस तरह गाँव के लोगों ने निराशाजनक बातें ही बताईं। रमणय्या ने भी समझा कि व्यापारियों का पता लगाकर बैल पकड़ना आसान काम नहीं है। वह है भी तो अकेला। घर पर बूढ़े माता-पिता को छोड़कर कितने दिन तक गाँव-गाँव घूमता रहेगा। घर पर बाप-मा ने भी बहुत समझाया कि अब वे सब बातें छोड़ो, कोई फायदा नहीं होगा।

दिन भर इधर-उधर मारा-मारा फिरने के बाद शाम को घर आया रमण्या। उसका मन स्थिर नहीं होता है। बथान में बैल न होने के कारण सारा घर ही जैसे उसे काट खाये डालता था। सड़क पर चलनेवाले बैलों को देखकर उसका मन ललचा जाता। बैल दिन-भर कहीं भी जाता ; मगर शाम को जरूर घर पहुँच जाता था। शायद अब भी आ जाय, इस आशा से रमण्या शाम को दरवाजे पर बैठकर उसकी बाट जोहता। बथान में जाकर घूमता रहता। जिस खूँटे से बैल बाँधा जाता था, उस खूटे की ओर उसने गौर से देखा। उसे मालूम पड़ा कि बैल गर्दन उठाकर उसको सहलाने के लिए कह रहा है। फिर ठीक से देखा तो सिर्फ खूँटा ही था। उसका दुःख उभड़ आया। अभी बैल के घर आने का समय था। इसी समय वह छोटी डलिया में दाना देता था। अभी ही नाद पर बाँधकर घास देता था। सब बातें एक-एक कर याद आईं। मगर यह सब कुछ करने को नहीं रहा। मानो उसका हाथ ही टूट गया है। उसी समय दीवार से लगाकर रखे हुए हल और जूये पर उसकी नजर पड़ी। फिर बैल की याद ताजी हो गई। आंखें भीग आईं। वेंकन्ना की मूर्ति घूमने लगी। 'अब मैं खेती कैसे करूँ वेंकन्ना'—कहकर उसने आँखें पोंछ लीं।

रमण्या घर में आया। वहाँ भी उसकी नजर घण्टी, चमड़े की गरदान और रस्सियों पर पड़ी—जो दीवार पर खूँटी से लटक रही थीं। वह दुःख वह न सँभाल सका। पास ही खाट पर औंधे मुँह पड़कर फफकने लगा।

घण्टा भर रमण्या उसी तरह पड़ा रहा। भोजन का वक्त भी

हुआ। मा ने खाने के लिए बुलाया। भूख नहीं है, वह नहीं खायगा—रमणय्या का जवाब मिला।

'यह क्या बेटा? मालूम पड़ता है तुम पगले हो गये हो! बैल गया तो गया। उसके लिए खाना-पीना छोड़ दोगे भला! तुम तो मर्द हो, तुमको क्या! भगवान् तुमको बनाये रखें तो ऐसे लाखों बैल आयेंगे-जायेंगे। इस तरह दुःखित होकर बैठे रहने से क्या होगा? वाह, बड़ा अच्छा है! हाँ उठो; खा लो। मा ने फिर बुलाया।

'.....'

'जानते हो तुम्हारे बाप तुम्हारी यह हालत देखकर कितने दुखी हो रहे हैं? समय ही ऐसा आ गया, और भाग्य भी तो चाहिये। शनीचर सिर पर नाच रहा था। इसलिए इसको बेचा, नहीं तो भला उनकी इच्छा थोड़े ही थी बैल बेचने की! उठो, तुम उठकर मुँह नहीं जुठाओगे तो वह भी नहीं उठेंगे। देखो, हम तुम्हीं पर आस लगाये जी रहे हैं। एक तुम हो। तुम भी इस तरह करोगे तो कैसे?'—मा ने जबर्दस्ती उठाया।

उसकी हालत देखकर बाप दुःखित हो रहे हैं—यह सुनते रमणय्या सचेत होगया। अगर उसे दुःख भी हो तो उसे बाप से छिपाकर अपने पेट में ही रखना चाहिये। उसने उठकर भोजन किया।

दिन बीत रहे हैं। वेंकन्ना को बेचे, एक, दो, तीन महीने बीत गये। बूढ़ा राघवय्या एकाएक बीमार पड़ा। बेटा के हाथों में ही चल बसा। रमणय्या के कंधों पर मानो हजारों मन बोझ पड़ गया।

दूसरे महीने रमणय्या का गौना हुआ, जोरू आई। रमणय्या के

जीवन में सुख-दुःख का इन्द्रधनुषी खेल हो रहा था। वह उस सुख-दुःख को बँहगी पर रखकर जोर से चलने लगा तो बाँस की बँहगी उसकी कमर की तरह ही लचक जाती, कभी इधर, कभी उधर।

तम्बाकू की गठरी लेकर गाँवों में घूमते वक्त भी उसकी आशा सिर उठाकर कहती—शायद वेंकन्ना मिल जाय। कहीं जानवरों का झुंड दीख पड़ता तो वह उनमें घुस कर वेंकन्ना को खोजता। कोई बैल दिखाई पड़ता तो सावधानी से जाँच करता कि यह वेंकन्ना तो नहीं है। वेंकन्ना की तरह का कोई बैल दीख पड़ता तो जल्दी भ्रम हो जाता। जब मालूम हो जाता कि यह उसका वेंकन्ना नहीं है तो एक लम्बी साँस लेता। उसे एक बार देखना चाहिये, यही उसकी एक मात्र अभिलाषा है।

दिन ज्यों-ज्यों बीतता गया त्यों-त्यों रमण्या की वह आशा भी आकाश-कुसुम होने लगी। आखिर वह उसे भूल भी गया।

रमण्या अपनी दुनिया, अपनी औरत, अपना सुख—इसी की चिन्ता में, इस लौकिक संसार में डूबने-उतराने लगा।

(५)

कालचक्र कितनी जल्दी घूमता है! वेंकन्ना को बेचे सात महीने हो गये।

वह अगहन का महीना था। जाड़ा खूब कड़ाके का था।

आदत के मुताबिक लक्ष्मम्मा भोर होते ही उठी। घर में लड़का और पतोहू गाढ़ी नींद ले रहे थे। मुर्गे 'कुक डूँ कूँ' बोलने लगे।

पूरब में प्रकाश फैला। घना कुहरा छाया हुआ था। आँगन

झाड़कर लक्ष्मम्मा दरवाजा खोलकर बाहर झाड़ू लगाने आई। हाथ में झाड़ू लिये उसने बाहर पैर रखा। मगर किवाड़ खोलते ही एक दुबला-पतला बैल उसको ढकेलता हुआ भीतर आने लगा। बैल शायद बदमाश हो, मारने आ रहा हो, लक्ष्मम्मा दो कदम पीछे हटी। बैल भीतर आया और बथान की ओर उत्तर तरफ जाने लगा। 'हा, हा, दूर-दूर करती हुई लक्ष्मम्मा समय पर लाठी वगैरह कुछ न मिलने के कारण झाड़ू लेकर ही उसे मारने दौड़ी। मगर उन सब बातों की परवाह न करके बैल बथान में ही जाकर रुका।

बथान में दूध देनेवाली भैंस, पाड़ा, भैंसा बँधा था। न मालूम वह बैल किसका है। कहीं उन जानवरों को मारे! कितना भी हाँका, मगर अनसुनी करके बथान में चला ही गया। लक्ष्मम्मा जरा घबड़ा-सी गई।

'बबुआ! रमणय्या! जरा बाहर तो आ।'—पुकारा लक्ष्मम्मा ने।

'क्यों'—खाट पर से ही बोला रमणय्या।

'किसी का बैल बथान में आकर, देखो गड़बड़ कर रहा है। कितना हाँकने पर भी नहीं भागता है। भैंसे के बच्चे को कहीं मारे न! एक बार ज़रा उठकर इधर आ तो! जरा बाहर हाँक दे।'—लक्ष्मम्मा चिल्लाई।

धोती सम्हालता हुआ रमणय्या बथान की ओर गया।

'यह क्या, लोग अपना माल-जाल ठीक से बाँधते नहीं हैं। गाँव में छोड़ देते हैं। उधर पानी का बर्तन वगैरह है—न जाने क्या सत्यानाश किया इस बैल ने।'—भनभनाती हुई बाहर आकर झाड़ू देने लगी।

रमणय्या जब तक बैल को खोजता हुआ बथान में गया, तब तक तो वह अन्दर जाकर भैंसे के पास खूँटे पर खड़ा हो गया। न मालूम उस बैल को देखकर भड़क गया था क्या ? भैंसा, पाड़ा, भैंस—सब जानवर उठकर खड़े हो गये और उस बैल की ओर देखने लगे।

'आ, आ' कहता हुआ हाथ में छोटी लकड़ी लेकर रमणय्या बैल के पास गया। उसको देखते बैल इधर बढ़ आया। और सामने आकर गर्दन उठाई, मानो गर्दन के नीचे सहलाने को कह रहा हो।

उसी समय पूरब में अरुण किरणें फूट पड़ीं। रमणय्या ने अच्छी तरह बैल को देखा। उसके चारों तरफ़ घूमकर परीक्षा की। उसकी पीठ पर हाथ रखा। पुराने खून ने पुराने खून को पहचान लिया।

रमणय्या जोर से चिल्ला उठा—अम्माँ, वेंकन्ना आया। ओ अम्माँ, वेंकन्ना !'

'आँ, आँ क्या ? हमारा वेंकन्ना ? बालाजी वेंकन्ना ?'—चिल्लाती हुई वह बथान की ओर दौड़ी।

जब वह पहुँची तो उसने देखा कि उसके दोनों बच्चे आपस में मिल रहे हैं।

'कहीं से भाग आया है ! बेटा, देखा इसका विश्वास ? उसको बेचे आज सात महीने हुए। मगर फिर भी क्या ? उसको कितना याद है देखो तो ! न मालूम किस गाँव से आया है ? कब चला होगा ?'—कहती हुई लक्ष्मम्मा भी बैल के पास आई।

'मेरे वेंकन्ना, कैसे हो गये ? सूखकर हड्डियों का ढाँचा हो गये !' रोती हुई लक्ष्मम्मा बोली—हम समझ रहे थे, तुम भूल गये ! अब तक

कहाँ थे बेटा ? भाई रमण्य्या की याद है ? मैं याद हूँ ? तुम्हारे लिए छट-पटाकर मर गये बूढ़ा। तुमको नहीं देख सके। आज सबेरे तुमको देखते तो आज कितनी खुशी से फूल उठते।'

रमण्य्या वेंकन्ना की आँखों में आँखें डालकर तन्मय हो गया। वेंकन्ना भी उसी तन्मयता से रमण्य्या को देखने लगा।

'हाय, हाय मेरा सोना ! आँख में ही सारा प्राण समाया हुआ है। इस तरह सूख गये क्यों वेंकन्ना कि पहचानना भी मुश्किल हो गया ? किवाड़ खोलकर देखा तो किसी का बैल समझकर भ्रम में पड़ा। मेरा वेंकन्ना, यह घर छोड़कर गये तो मालूम पड़ता है, बहुत दुःखी हुए। बेटा, हड्डी, हड्डी हो गये क्यों ?'—लक्ष्मम्मा ने हाथ से सहलाया।

बैल के मुँह पर मुँह रखे ही रहा रमण्य्या।

'तुमको उन व्यापारियों के हाथ बेचकर हमने बहुत पाप किया ! इस सात महीने तक न मालूम तुम कितना दुःखी हुए ! चारा-पानी लगा नहीं, कैसे सूख गये ? कहाँ से आये वेंकन्ना ! अब तक किसके घर रहे बेटा ?'—न मालूम कितने सवाल करने लगी लक्ष्मम्मा।

इतने में बाहर कोई दो मर्द खड़े लक्ष्मम्मा को बुला रहे थे। वह भीतर बथान में थी तो वे लोग भी अन्दर आये।

'हम चमार हैं। हमारा घर है जगतपुर। परसों हमने यह बैल हाट में मानादी रेड्डी से आठ रुपए में खरीदा है।'

'अरे तुम लोग चमार हो ? हाय, हाय, मेरे वेंकन्ना तुमको क्या लिखा था ?'—लक्ष्मम्मा चिल्लाकर रो उठी।

'आपके पास जिन व्यापारियों ने यह बैल खरीदा वे लोग कोट-पाडु के यानादि रेड्डी के हाथ पचास में इसे बेच गये। मगर रेड्डी के पास यह बैल कभी उठकर खड़ा न हुआ। कितना भी खिलाया-पिलाया मगर यह दिन-दिन गिरता ही गया। सूख कर काँटा हो गया। रेड्डी ने बहुत तरह से दवा-दारू किया; मगर फायदा कुछ न हुआ तो आखिर हारकर परसों हमारे हाथ आठ रुपए में बेच दिया। हम इसको हाँककर ले जा रहे थे कि कल रात को हमारी आँख बचा कर भाग खड़ा हुआ। यह इस गाँव का बैल है सो हमें मालूम था। इसीलिए यहीं आया होगा, सोचकर उसी रात को उठे और खोजने आ रहे हैं। देखिये, उस बैल को जितना याद है उतना आदमी को रहेगा?' उन चमारों ने सारा वृत्तांत कहा।

ये सब बातें सुनकर लक्ष्मम्मा और रमणय्या को काठ मार गया।

वेंकन्ना का सिर रमणय्या की भुजाओं में ही था। रमणय्या की आँखों से नाला बह रहा था। लक्ष्मम्मा बार-बार नाक-आँख साफ करती वहीं खड़ी रही। दाढ़ी के नीचे लाठी पर हाथ लगाये वे चमार खड़े देख रहे थे।

धँसी हुई दोनो आँखें एक ही बार घुमाईं वेंकन्ना ने। रमणय्या ने दोनो आँखें खोलकर बैल की आँखों में देखा। खड़ा हुआ वेंकन्ना अगले दोनो पैर टेककर झुक गया, फिर नन्दी की तरह बैठ गया। बैल का सिर गोद में लेकर रमणय्या बैठ गया। बैल ने दोनो आँखें मूँद लीं।

मार्क्ली दुर्ग का कुत्ता

विश्वनाथ सत्यनारायण

[आंध्र देश में कवि श्री विश्वनाथ सत्यनारायण से लोग भली भाँति परिचित हैं। आप संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं और तेलुगू भाषा और साहित्य का अध्ययन आपका गहरा है। एक प्रतिभावान कवि तो आप हैं ही।

आपने सुन्दर उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। आपका 'एकवीरा' नामक उपन्यास तो हिन्दी की बड़ी जनता के सम्मुख प्रस्तुत होना चाहिये।

पुरातन के आप पुजारी हैं। क्या वह आपकी कहानी हो, कविता हो, सर्वत्र ही आप प्राचीनता के प्रति अपना यह मोह प्रदर्शित करते हैं। मछलीपट्टम कालेज में तेलुगू के अध्यापक हैं और अपनी वेश-भूषा से किसी प्राचीन ऋषि की याद दिलाते हैं।

'मक्ली दुर्ग का कुत्ता' एक ओजस्वी रचना है।]

माक्ली दुर्ग का कुत्ता

माक्ली दुर्ग रेल्वे स्टेशन गुंटकल-बगलोर लाइन पर है। प्लेट-फार्म से रेलवे स्टेशन कुछ ऊँचाई पर है। उसकी बगल में एक बड़ा पहाड़ है, जिस पर पेड़-पौधे और चट्टानों का घना आवरण है। कभी-कभी भेड़-चीते वगैरह रात के वक्त वहाँ पर आया करते हैं। स्टेशन की पिछवाड़ी में एक बड़ी घाटी है जो बहुत उपजाऊ जगह है। घाटी के उस पार पहाड़ पर किसी अमीर का एक खूबसूरत महल है। उस घाटी से दो-तीन झरने भी बहते हैं।

माक्ली दुर्ग स्टेशन बहुत छोटा है। वहाँ एक छोटी दूकान भी है। गाड़ी के आने-जाने के वक्त दुकान खुली रहती है। दुकान खुलते ही एक कुत्ता तुरन्त वहाँ हाज़िर हो जाता है! दुकान ज़रा ऊँचाई पर है। कुत्ता अपना सिर ऊपर उठा—जिससे उसकी नज़र मिठाई के आबे पर पड़ सके—ऊर्ध्व तपस्या करता है। वह हमेशा इस फ़िक्र में रहता है कि दूकान-मालिक के, चीज़ें ठीक से रखते समय या किसी के खरीदते समय एक टुकड़ा गिर पड़े तो खा लूँ। मगर सात-आठ दिन में भी कभी एक टुकड़ा नहीं गिरता। हाँ, खरीददार सात दस दिन का बाकी समझकर नीचे फेंक देता तो उसको मिल जाता। उसको दाँतों से दबाकर मुश्किल से हलक के नीचे उतारता, फिर खाँसकर उगल देता। रेल के चले जाते ही दूकानदार अपनी दुकान बन्द कर देता। कुत्ता जाकर झरने का पानी पी लेता। आगे के पैर पसारकर कुत्ता घास पर लेट जाता और घास कुतरने लगता। वह टिड्डियों को पकड़ने में बड़ा होशियार है। कभी-कभी खेतों में पिड़ुकियों का भी शिकार करता। झरने का पानी पीने, अच्छी हवा खाने, घाटी में उतरने-चढ़ने की बदौलत वह काफ़ी मज़बूत हो गया था। मगर, कभी भूलकर भी सामने के पहाड़ पर नहीं जाता।

एक बार एक सज्जन एक विलायती कुतिया को साथ लेकर उस स्टेशन पर आये। पहली ही मुलाकात में दोनो कुत्तों में प्रेम हो गया। उस शख़्स के हाथ में मोटी छड़ी थी। उसको देखकर यह कुत्ता अपनी प्यारी के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सका। मायके में रहनेवाली युवती की तरह वह विलायती कुतिया अपने प्यारे की तरफ़ बार-बार

देखने लगी। यह दुर्गवाला कुत्ता उसकी ओर, लोगों की आँखें बचाकर देख लेता कि कहीं शरीफ़ लोग उसे आवारा न समझ बैठें। उस भले आदमी ने कुतिया को एक खूँटी में बाँध दिया और कहीं सामान तौलाने के लिए चला गया। फिर क्या था, दोनो कुत्ते एक हुए।

स्टेशन मास्टर कुछ पढ़ा-लिखा आदमी था। इस अजनबी और उसमें आधुनिक बातों पर बहस चलने लगी।

स्टेशन मास्टर—नहीं जी! वर्ण-व्यवस्था का रहना ज़रूरी है। हमारे बुजुर्गों ने उसको बनाया है। उन्होंने जिस मतलब से इसे चलाया है, बग़ैर उसको जाने उसके खिलाफ़ बोलना अच्छा नहीं।

वे सज्जन—ऐसा कहने से काम न चलेगा। बताइये उनका क्या मकसद है। बुजुर्गों ने बनाया है। इसलिए आँख बन्द कर कबूल कर लें, यह ठीक नहीं। अब वे दिन नहीं रहे कि हरेक बात बड़ों की कही हुई कहकर मान लें। अब उन्हीं बातों को मानते हैं, जो बहस की कसौटी पर टिक सकें। वरना कोई मानने के लिए तैयार नहीं होता।

स्टेशन मास्टर—हम नहीं जानते कि उनका असली मकसद क्या है। हममें इतनी लियाकत नहीं कि उन बातों को समझ सकें।

वे सज्जन—तब मैं नहीं मानने का। दुनिया की तरक्की के साथ हमारी अक्ल भी बढ़ रही है, घट नहीं रही। मैं कहता हूँ कि हमारे बुजुर्ग बहस करना नहीं जानते थे। मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान की जो तरक्की आज हुई है, वह कदीम जमाने में न थी।

स्टेशन मास्टर—तो आप जात-पाँत को उड़ा देने के पक्ष में हैं?

वे सज्जन—जी हाँ, यह जात-पाँत ही सभी झगड़े-फिसाद की जड़

है। कुछ लोग बे-वजह अपने को बड़ा मानने लगे हैं। पिछड़ी हुई कौमों पर हुकूमत करते हैं। असवर्ण विवाह और सहभोज का रिवाज फैलाना चाहिये। तभी देश की निजात हो सकती है।

स्टेशनमास्टर—मैं भी मानता हूँ कि सब के साथ एक तरह का वर्ताव होना चाहिये; मगर मैं असवर्ण विवाह के खिलाफ़ हूं। ऊपर से दीखनेवाले फ़र्क को दिल से दूर करना चाहिये। मेरा ख़्याल है कि हमारे पूर्वजों का यही मकसद होगा।

वे सज्जन—ऐसा कहाँ कहा गया है? उनके द्वारा समाज को जो नुक्सान पहुँचा है, उसका जिक्र नहीं किया जा सकता।

उस भलेमानुस ने बाहर आते ही अपनी कुतिया की तरफ देखा। दोनों कुत्ते अपने जुदेपन को भूलकर मजे में मिले हुए हैं। वह भला आदमी एक दौड़ में वहाँ पहुँचा और दुर्ग के कुत्ते को ज़ोर से दस-बारह छड़ी लगा दीं। रस में डूबा हुआ वह कुत्ता जल्दी छुड़ाकर भाग नहीं सका। आखिर मुश्किल से छुड़ाकर निकल गया। जब वह बाहर आ पहुँचा, तो उसे महसूस हुआ कि उसकी जाँघ टूट गई है। उस शरीफ़ ने अपनी कुतिया को भी चार-पाँच लातें जमा दीं।

इस समूचे शोरगुल को सुनकर स्टेशन मास्टर बाहर आया और सभी बातें समझने के बाद बोला—क्यों बाबूजी! कुत्ते को बड़ी मार लगाई?

वह भलामानुस—यह खानदानी कुतिया है, इसके लायक एक अच्छे कुत्ते को खरीद लाने की कोशिश की। मगर साहब मिला नहीं। यह आजकल गरमी पर है। इसे मैं बेंगलोर ले जा रहा हूँ, इसी कौम के कुत्ते के साथ जोड़ा मिलाने।

स्टेशन मास्टर ज़रा हँसा। उस आदमी के तेवर कुछ चढ़े। फिर भी उसने हँसने की कोशिश की।

इसके बाद दोनो ने दोस्ताना तौर पर बातें कीं। विलायती कुतिया की खूबसूरती, चेहरे के बीच का काला निशान, कूंची की तरह की पूँछ और गेहुँआ रंग देखकर स्टेशनमास्टर ने उसकी बड़ी तारीफ़ की; चूमा, चुमकारा। आखिर उस अजनबी से प्रण करवा लिया कि उस कुतिया का एक पिल्ला वह उसको देगा।

इस देहाती कुत्ते के संसर्ग से विलायती कुतिया को सारी देह में कीचड़ लग गई। उसके एकाध दिन के पहले की बारिश से चट्टानों के बीच में पानी टिका था। उस शरीफ आदमी ने पेटी से दो सफेद गमछे और एक साबुन निकाला और पानी के पास ले जाकर उसे अच्छी तरह नहलाया-धुलाया और उन गमछों से पोंछ दिया। इतने में गाड़ी आई। कांय-कांय करनेवाली अपनी कुतिया को गमछे में छुपाकर, वह आदमी रेल पर चढ़ा। दुर्गवाला कुत्ता लँगड़ाते हुए, उस कुतिया के कुछ फासले पर खड़ा होकर धीमी गुर्राहट के साथ उसकी ओर देखने लगा। उस शरीफ़ ने खिड़की से बाहर झाँककर दो बार छड़ी हिलाई। बेचारा वह कुत्ता और भी दूर खिसक गया।

गाड़ी चलने लगी। वह कुतिया कांय-कांय करती बार-बार दरवाजे के पास दौड़ती और झाँककर देखने लगती। वे उसे जंजीर से नज़दीक खींच लेते। जब गाड़ी बेंगलोर पहुँची, तो वह चिल्लाना छोड़ अपने मालिक के पास आकर बैठ गई। उन्होंने उसे गोद में खींचकर—लीला, ऐसा नहीं करना चाहिये न?' कहकर उसके मुँह पर मुँह

रखकर चूम लिया। दुर्गवाले कुत्ते के चुम्बन में अपने को खोई हुई कुतिया ने चुम्बन का निषेध-सा कर दिया, गोया यह पराये पुरुष का चुम्बन हो।

× × ×

(२)

दुर्गवाले कुत्ते ने अपनी जाँघ को जंगली जड़ी-बूटियों पर रगड़कर और झरने की कीचड़ लगा-लगाकर पन्द्रह दिन में कहीं जाकर चंगा किया। पहले की तरह स्टेशन में आता-जाता है। मिठाई की दूकान की तरफ़ भी उसी तरह से देखता है।

एक-दो विद्यार्थी उस दूकान से कुछ खरीदकर, वहीं तख्त पर बैठकर खाते थे। उन दोनो की बातें कुत्ते के कान तक पहुँचीं।

पहिला—हमारे यहाँ रहम नाम की चीज़ नहीं है। बड़े सभी छोटों पर हुकुम चलाते हैं। देखो, मैंने बी० ए० पास किया। कोई नौकरी नहीं देता ग़रीब फाकेकशी से मर रहे हैं। अमीरों को सोफ़ाओं पर, छोड़ और कहीं नींद नहीं आती।

दूसरा—हमारे देश के लोग सभी खुदग़रज हैं। किसी को मुट्ठी-भर भीख भी नहीं देते। आख़िर गरीबों को कुछ नहीं देते; हाँ, भले ही कुत्तों को खिला दें।

कुत्ता उन दोनो के पास आ पहुँचा और उनके हाथ में पुड़िया देखी। वे दोनो अंग्रेज़ी में बोलते थे। उनमें से एक बूट पहने था। पैर पर पैर रखकर बैठा था। बूटवाले पैर से उसने कुत्ते के पेट में एक लात मारी। कुत्ते ने दो-तीन रोज़ से कुछ खाया-पिया न था। मालूम

नहीं, वह लात उसकी किस नस में लगी, कुत्ता छटपटाता हुआ गिर पड़ा। थोड़ी देर के उपरान्त सँभल गया और उठकर जाने लगा। दूसरे विद्यार्थी ने अपने हाथ से एक टुकड़ा उसके सामने डाल दिया। दर्द के मारे बिना उसे छुये ही, वहाँ से वह चल दिया।

उस रोज़ पहाड़ से एक चीता रात के वक्त स्टेशन में आया। कुत्ता खौफ़ के मारे उस दुकान के नीचे दबकर छिप रहा। आधी रात के वक्त सारा स्टेशन सुनसान-सा था। चीता गन्ध से पहचान गया, और उस दूकान के नज़दीक ताक में बैठ गया। चीता अन्दर मुँह डालता तो कुत्ता उसे नोच लेता। पीठ घुमाकर बैठता तो पूँछ और पीठ में काट खाता। एक बार चीते को गफलत में पाकर कुत्ता बाहर आया और उसके गले को पकड़कर झटकार दिया। फिर जब चीता उसपर वार करने लगा तो कुत्ता उसमें घुस गया। इस तरह तीन-चार घण्टे तक लुका-छिपी लड़ाई चली और आखिर कुत्ते ने झपटकर उसका गला पकड़ा और तब तक नहीं छोड़ा, जब तक चीते के हलक में जान बाकी रही।

सवेरे सभी लोग जमा हो गये। कुत्ते की सबने बहादुरी देखी। एक दो बरसों से जिसकी खोज-खबर तक लेनेवाला कोई न था, उसकी आज बड़ी कद्र हुई। स्टेशन मास्टर की फ़रमाइश हुई कि उसे हर दिन खाना खिलाया जाय। उस रोज़ शाम को दुकानवाले ने भी दरियादिली दिखाई। पकौड़ी का एक टुकड़ा भी सामने डालने में जो कंजूसी दिखाता था, उसी ने आज बरस-भर की बची हुई तेल से बनी टोकरी भर मिठाई उसके आगे रख दी। उस मिठाई को कोई खरीदता ही

न था। कोई नहीं खरीदता ; इसलिए उसे ताजा बनाने के वास्ते बार-बार तेल में गरम करता, तब भी उसकी खरीददारी नहीं हुई। उसने उसे बड़े रहम और मुहब्बत के साथ कुत्ते के आगे रख दिया। उसने उसे खा लिया, बड़े प्यार से खा लिया। उसके दूसरे रोज़ कुत्ता रात-भर कराहता रहा मानो बहुत दर्द हो रहा हो। घर में सोते हुए स्टेशन मास्टर और पोर्टरों ने सोचा कि फिर चीता आ गया है। कुत्ता दिन भर जङ्गल में घूम आता। उसको कोई बड़ी बीमारी हो गई। सामने पड़नेवाले हरेक पत्ते को उसने कुतरा। मगर किसी से कुछ फ़ायदा न हुआ। भीगी मिट्टी ने भी जवाब दिया। झरने के पानी ने भी अपनी लाचारी दिखाई। रात को स्टेशन में लेटकर कराहता। नसें ऐंठ जातीं। ज़ोर से चिल्लाने लगता मानो उसकी कमर गाड़ी के नीचे पड़कर दब गई हो। एक सप्ताह इस तरह कराहते-कराहते बीता। उसका कुछ निदान निकल आया। दो दिन उपवास करके भी जिसने चीते को चीर डाला था, वह इस सप्ताह भर की बीमारी से बिलकुल कमज़ोर हो गया। पीछे के पैर और चूतड़वाला हिस्सा निहायत निकम्मा हो गया। किसी कोने में पड़े-पड़े रोने की भी अब उसके पास ताकत नहीं बची। इसलिए धीमी आवाज़ में कराहता रहता। मिठाई वाली दुकान के नाम से वह काँप उठता। उधर जाने का नाम भी नहीं लेता। उसकी तरफ आँख भी नहीं उठाता। इसके पेश्तर वह आज़ादी के साथ स्टेशन में घूमता था। अब कभी वह स्टेशन मास्टर के कमरे में जाकर झाँकता तो वहाँ बड़ी घिन के साथ लोग कोसते हुए उसे बाहर खदेड़ते।

× × ×

(३)

छः महीने गुज़र गये। वह कुत्ता न मरता है, न जीता है। एक दिन विलायती कुतियावाले भलेमानुस आये। स्टेशन मास्टर और उन्होंने पहले की दोस्ती की याद करके बड़ी देर तक बात-चीत की। मास्टर ने—'अजी! कुतिया ने बच्चे जने कि नहीं? पूछा। उस शरीफ आदमी ने कहा—बाबूजी, कुतिया को मैं बेंगलोर ले गया। उसने अपनी ज़ात के कुत्ते को पास आने तक न दिया। आपके कम्बख़्त कुत्ते ने उसे ख़राब कर डाला। कुतिया ने बच्चे जने। दो पिल्ले हुए। लेकिन मामूली देहाती! मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ। अबकी बार अगर जने, तो ज़रूर ला दूँगा। स्टेशन मास्टर बोला—'नहीं जी, हमारा कुत्ता बड़ा अच्छा है। बड़ा बहादुर। कुछ दिन पहले उसने चीते को मार डाला।' भलामानुस—'जाने दीजिये। कमबख़्त कुत्ता। मुझे उसे मार डालने की इच्छा हो रही है। अगर वह अभी तक आपके स्टेशन में कहीं हो, तो दिखा दीजिये। उसे काट डालूँ।'

इतने में चूतड़ घसीटते हुए वह कुत्ता वहाँ आ पहुँचा। स्टेशन मास्टर ने कहा—यही वह कुत्ता है। उसको देखते ही वे सज्जन आपे से बाहर हो गये और एक छड़ी लगा दी। वह बेचारा भाग नहीं सका। पैर और गला ऊपर उठाकर रोने लगा। पोर्टर ने उसे पैर से दूर ढकेल दिया। स्टेशन मास्टर साहब ने हँसकर कहा—आप इतने नाराज़ क्यों होते हैं साहब!

उन दोनो की दोस्ती और भी बढ़ गई। इस वजह से वह भला आदमी उस रात को स्टेशन-मास्टर का मेहमान बना। उस रात को

कुत्ता गाड़ी के नीचे पड़ गया। गाड़ी उसकी कमर के ऊपर से चली गई। जिस तरह जर्राह मरीज़ के शरीर के अंगों में से सड़े हुए अंग को काट डालता है, उसी तरह बीमारी से बेकाम हुए उसके पीछे के हिस्से को गाड़ी ने काट डाला। मगर बाकी अंगों की हिफाजत न हो सकी। आखिर छटपटाकर वह मर गया।

× × ×

(४)

इसके चार महीने के बाद वे सज्जन फिर आये और कहा—दोनों में से एक मर गया है, इस बच्चे को आप लीजिये। और उस पिल्ले को स्टेशन मास्टर के सिपुर्द किया। वह छः महीनों में बढ़कर अपने पिता के बराबर हो गया। ज़रा भी डरता नहीं। सामनेवाले पहाड़ पर सैर करके चला आता है। कोई उसे मिठाई खिलाने आता, तो दाँत निकालकर काट खाने दौड़ता। कई कुतियाँ वहाँ पर जमा हो जातीं; मगर वह कभी आँख उठाकर भी उधर नहीं देखता। वह छोटे-छोटे चीतों, खरगोशों और सियारों का शिकार करता। विद्यार्थी आकर 'भूतदया' के ऊपर व्याख्यान देते, तो उनकी ओर बड़ी तेज़ तथा डरावनी निगाह से देखता। वह शरीफ़ आदमी बीच-बीच में आकर स्टेशन-मास्टर से 'वर्ण-व्यवस्था' पर बहस किया करते। इस कुत्ते को सामने पाकर चूमने जाते। वह बड़ी नाराज़ी से दाँत दिखाकर चीते का गोश्त जो बदहज़मी से बचा रहता, उसके सामने उगल देता। गाड़ी के आने का जब समय होने लगता, तो मील भर की दूरी से ही उसकी

और लाल-लाल आँखों से देखता और अगले पैरों के नाखूनों से ज़मीन खरोचता हुआ नफ़रत के साथ दूर हट जाता।

मिठाई की दूकानवाले ने बासी मिठाई उसके सामने डाल दी, तो उसने उसकी जाँघ की बोटी निकाल ली। सबने कहा कि यह कुत्ता नहीं, बल्कि चीता है। उसको मानो आदमियों से नफ़रत-सी हो गई। कुछ दिन बाद आदमियों को वह जगह छोड़कर जंगल में ही उसने अपनी जगह बना ली। कभी-कभी वह स्टेशन के नज़दीक आता। हमेशा घूमते रहने से, या माता को पड़ने के कारण, चाहे जो हो, उसकी पूँछ के बाल झबरेदार होगये। मांसाहारी दाँत निकल आये। अगर कभी आदमी की गंध उसके पास आती, तो उसी तरह नफ़रत के साथ हट जाता जिस तरह बृहस्पति के भाई संवर्त्त महर्षि हट जाते थे।

ज्योत्स्ना रानी

वेंपटि नागभूषणम्

[श्रीवेंपटि नागभूषणम् का जन्म-स्थान मछलीपट्टम है। मछली-पट्टम तेलुगू साहित्य का केन्द्र है। ऐसी उर्वरा भूमि में जन्म लेकर श्रीनागभूषणम् भला साहित्य में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करें तो आश्चर्य ही क्या है। आजकल आप पूना के वाडिया कालेज में अंग्रेज़ी के अध्यापक हैं। जन्म १९०८ ई० में हुआ, जिसके अनुसार अभी आप ३१ वर्ष के नवयुवक हैं।

पर इस अल्प आयु में ही आपने लगभग २०० कहानियों की रचना कर डाली है। कहानियों का एक संग्रह 'मुत्यालशाला' प्रकाश में आ चुका है। उसकी पहिली अमर कृति 'तलवनि तलंपुलु' का अनुवाद 'ज्योत्स्ना रानी' यहाँ दिया जा रहा है। यह कहानी इस संग्रह की दो-तीन सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है और बहुत ऊँची उठी है।

अंग्रेज़ी में भी श्रीनागभूषणम् की कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।]

ज्योत्स्ना रानी

उसने पहले ही पत्र लिख दिया कि अमुक दिन आ रहा हूँ। मित्रों के यहाँ से उत्तरों की वर्षा हुई कि हाँ, जरूर आओ, हजारों विघ्न आयें, तब भी इन्तज़ाम करके उस दिन अवश्य आओ। रेलगाड़ी में पैर रखने के पहले उसने टेलिग्राम भी दिया। मगर स्टेशन पर उतरा तो इतना शोर-गुल मचाकर बुलाने वाले मित्रों में एक भी स्वागत के लिए नहीं आया।

बूढ़े हो गये मगर स्वभाव वही रहा। कुछ भी परिवर्तन नहीं! पहले लड़कपन में भी यही बात थी। उन पर विश्वास करके कुछ करना मुश्किल होता था। ठीक समय पर धोखा देना, काम बिगाड़ना यही तो उनका स्वभाव था। आज भी वही बात है।

मित्र स्टेशन नहीं आये—इसके लिए तारक को गुस्सा नहीं आया। मगर जरा आनन्द में खलल पड़ गया, इसके लिए उसका मन जरा क्षुभित हुआ। स्वागत के लिए स्टेशन जाने से शायद उन्हीं के सिर पड़ जायगा—इस डर से सबने चुपकी साध ली। मगर उन्हें विश्वास था कि जब आयगा तो देखे बिना, मिले बिना कैसे जायगा!

रेलगाड़ी जब मछलीपट्टम पहुँच रही थी, उस समय उस आनन्द की घड़ी में भी उसे वे पुरानी बातें याद आ रही थीं। ओह, वह अज्ञात जीवन का नाश करनेवाली निराशा, आखिर को अपना गाँव—इस ममता को त्याग कर उस ऊसर मछलीपट्टम को छोड़ कर बाहर निकलना; फिर अनेक तरह का तकलीफें उठा कर मद्रास पहुँचना और वहाँ पर धन, दौलत, नाम-धाम कमाना—फिर...जीवन और उसका सुख ...।

आज तेलुगूवालों में तारक से अधिक प्रख्यात कोई चित्रकार नहीं है। उसकी रचनायें—कला-सृष्टि—संसार को मोहित करनेवाली बन गई हैं। कोई ऐसा देश नहीं जिसने उसे पुरस्कृत न किया हो। कोई ऐसा बड़ा आदमी नहीं जो उसकी मित्रता से गर्वित न हुआ हो।

किन्तु, तारक के और छुटपन के साथी उसी पुरानी जगह में हैं—

बढ़ना नहीं, फूलना नहीं, फलना नहीं। अपनी प्रतिभा को नष्ट कर रहे हैं। मछलीपट्टम छोड़ना उनके लिए असम्भव है। उसने कितनी कोशिश की कि उन लोगों को मछलीपट्टम से हिलावें, मगर न हो सका। कितनी बार उसने उन्हें अपने पास बुलाया, मगर उनका सुधार करना ब्रह्मा की ताकत के भी बाहर की बात है। जङ्गल में खिलनेवाली चाँदनी को कोई शहर में लाना चाहे तो कैसे हो सकता है? इसलिए तारकं अलग से ही उससे जहाँ तक बन पड़ता इनकी सहायता करता था।

मछलीपट्टम छोड़कर जाते समय उसने निश्चय किया था कि जब तक यह स्थिति न बदलेगी, अच्छी स्थिति न होगी, तब तक मछलीपट्टम का मुँह नहीं देखूँगा। स्थिति बदली, कल्पनातीत सुख-सौभाग्य प्राप्त हुआ, कई बार जन्म-भूमि का दर्शन करने की तैयारी की; मगर कोई न कोई विघ्न आ उपस्थित हुआ और वह न जा सका। और कोई भाई-बन्धु, नाते-रिश्तेदार थे नहीं, इसीलिए यों आने की कभी ज़रूरत न पड़ी। अकेला ब्रह्मचारी जो ठहरा।

अकस्मात् उसे छुट्टी मिली। मैसूर के राजभवन के लिए तैयार किये जानेवाले चित्र अनुमान से पहले तैयार हो गए थे और एकेडेमी को चित्र भेजने के लिए वक्त था। इस बीच में कुछ आराम कर लेना—मन और हाथ को भी जिससे जरा आराम मिले—भी ज़रूरी ही था। अच्छा ही हुआ। इसी बीच मित्रों की चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ आने लगीं। इसी लिए वह चला।

गाँव छोड़े यद्यपि पाँच-छः साल हो गये, मगर परिचितों की कमी नहीं

है। किसी के घर जाय तो सिर चढ़ाकर सम्मान करेगा। मगर तारकं को यह पसन्द नहीं था। यही नहीं उसे यह भी डर था कि उसकी अवाई सुनकर गाँव भर के लोग जमा हो जाँय और उसे साँस लेने की फुर्सत भी न मिले। इसी लिए तो नौकर-चाकर, कार वगैरह लाभ-काफ के बिना अज्ञात रूपेण आया है। बहुत नजदीकी मित्रों के सिवा और किसी को उसके आने की खबर है कहाँ? मित्रों के साथ बिना शोर-गुल के चार दिन आनन्द से बिताकर चले जायँ—यही उसका उद्देश्य था।

गाड़ी करके सीधे डाक-बँगला की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँच भोजन वगैरह करके सोचा कि चाय के वक्त तक सो रहूँ, और उस समय तक भी महाशय लोग न आयें तो खबर करूँ।

ज़रा आँखें अभी बन्द हुई थीं कि उसी दोपहरी में मित्र-मण्डली प्रत्यक्ष हुई! उनका आना देखकर पहले तो उसने नींद का अभिनय किया। मित्रों ने गुदगुदी लगाई तो पट सो गया। इसी तरह कुछ देर तक हल्ला-गुल्ला करने के बाद उठकर बैठ गया। इतने दिनों बाद मित्रों को देखा, इस लिए पहला गुस्सा भूल गया। पुराने खेल, वह जीवन याद करते हुए तथा आनन्द मनाते हुए त्योहार की तरह सारा दिन बिता दिया।

सायंकाल जब अन्धेरा छा रहा था, तब सब लोग घूमने निकले क्योंकि तारकं ने दिन में बाहर निकलना मंजूर नहीं किया। फिर पुरानी जगहों का, घूम-घूमकर दर्शन किया। घूम-घामकर होटल में भोजन किया। सब लोग थक गये थे। इसलिए सबेरे फिर मिलने का निश्चय

कर तारक को घोड़ागाड़ी में बिठाकर मित्र लोगों ने अपने-अपने घर की राह ली।

१२ बज रहे हैं। चाँदनी स्वच्छ मोती की तरह बिखर रही है। तारक ने ओसारे में आकर कमर सीधी करनी चाही। चाँदनी को देखते-देखते एक नशा-सा चढ़ने लगा। फिर उस सौन्दर्य-माधुरी से मन अलग नहीं हो सका। तरह-तरह के भाव अंकुरित होने लगे। मगर उसकी कल्पनायें चाहे कहीं भी विहार कर आयें अन्त में उन्हें शिल्पाराम में आकर ही शान्ति मिलती थी। ज्योत्स्ना लतिकायें नीलाम्बुद खंडों से मिलकर तरह-तरह के रेखाचित्र बनाने लगीं। उसके मानस-लोक में बस चाँदनी—सारी दुनिया को अपने वर्ण से सराबोर करनेवाली, विकार-रहित चमकीली—स्वच्छ चाँदनी ही चाँदनी थी। उस सौन्दर्य को—जिसका उपभोग करने में वह असमर्थ हो रहा है—क्यों न कूँची की नोक पर उतार ले वह? 'ब्लू बॉय' नामक चित्र से जो उसकी प्रख्याति हुई वह 'ज्योत्स्ना रानी' से पुनः क्यों न प्राप्त होगी?

विचारों में वह इतना मग्न हो गया कि उठना और उतरकर नाले के किनारे बालू पर चलना—वगैरह उसे कुछ भी मालूम न पड़ा। चाँदनी के प्रकाश में मूर्तिमान रूपसि उसको खींचे लिए जा रही है—मगर पकड़ाई नहीं देती है। वह रुक गई। तारक के पाँव भी आप ही आप रुक गये। देखा उसने। मगर मानो वह स्वप्न में ही था। उसके पास पहुँचने पर भी उसका सन्देह दूर नहीं हुआ। एक युवती, लावण्यवती, अकेली, आधी रात को, पानी के किनारे क्यों खड़ी है?

तारक के पास आने पर उसकी आहट से युवती का ध्यान टूटा।

देखा उसने ; फिर भयभीत हो पीछे की ओर भागी, मगर भाग न सकी। दस कदम जाकर बालू पर गिर पड़ी।

तारक ने अप्सराओं और यक्षिणियों के बारे में क ई बार सुना था। बहुत बार खोजकर हार गया था। और मन में निश्चय कर लिया था कि यह सब झूठी बातें हैं। शुरू से ही उन बातों पर उसका विश्वास कम था। डर नामक कोई चीज़ हो उसके पास नहीं थी। इसलिए उसे कोई घबराहट नहीं हुई। मन में आया—कोई है, मगर यहाँ क्यों आई है—आदि आदि।

'कौन हो तुम !'

वह सिर झुकाये बैठी थी। तारक ने समीप जाकर पूछा। वह कुछ बोल न सकी। भयभीत हो काँपने लगी।

'डरो मत ! कौन हो तुम बताओ ? इस समय, इस जगह क्यों आई ?'

उसके जवाब में सिसक-सिसककर रोना शुरू हुआ। तारक बैठ गया और उसका डर दूर करने के लिए उसकी पीठ थपथपाते हुए समझाने की कोशिश की।

'मैं...मैं...म...मर जाऊँगी...।'

सिसकती हुई एक-एक अक्षर करके बोली। सुनकर तारक काँप गया। मगर वह अधीर भाव प्रदर्शित किये बिना, मामूली ढङ्ग से दिल्लगी के तौर पर हँसते हुए बोला—

'ओ...तब तो बड़ा भारी काम करने जा रही हो !'

'उठो, उठो—चलो घर चलो। मैं पहुँचा दूँ। देखो, इधर देखो।

चाँदनी कैसी खिली हुई है। ऐसे समय में मरने के सिवा और तुमको कुछ नहीं सूझा ?'

बातें करते हुए, उससे अनुनय-विनय करते हुए तारक अनायास ही उसको देखता रहा। दूर आकाश में परिलक्षित चन्द्र-किरणों ने उसके हृदय को आवृत कर लिया। ज्योत्स्ना-समूह मूर्तिमान हो गया और वह आकृति इससे मिलने लगी। इस सुललित, गठित अवयव रेखाओं को कैनवास पर उतार सके तो धन्य हो जाय ! उसका भाग्य खुल गया है। अनायास प्राप्त सम्पदा को वह कैसे व्यर्थ कर सकता है ! इतना सुन्दर 'माडेल'...

उसके मन का आनन्द यद्यपि उसके चेहरे में प्रतिबिम्बित हो रहा था, फिर भी लड़की समझ न सकी। उसका सोचना—उसकी गड़बड़ी—और वह।

'क्या फिर ? उठो ! घर चलें !'—बातचीत फिर शुरू करने के लिए उसने प्रश्न किया।

'मैं—नहीं जाऊँगी, महाशय !'

'क्यों --?'

'शेर के पिंजड़े में जान-बूझकर कौन जायगा ?'

'ऐसी बात है ? तो फिर क्या करोगी ?'

'क्या करूँगी—मुझे नहीं मालूम। आप कृपाकर मुझे छोड़ दीजिये और अपनी राह जाइये।'

'अरे फिर भी कहो तो—वैसी विपत्ति क्या पड़ी है ?'

'क्यों ? आप—मेरी तकलीफों से...।'

'तकलीफों को छिपाने से वह और तकलीफ देती हैं। मुझ पर विश्वास नहीं कर सकती ? मुझे तुम अपना समझ सकती हो...।'

'दीखते ही आप भलेमानुस जान पड़े ; इसीलिए तो...'

'तो फिर संकोच क्यों ! आओ जरा आराम से अच्छी तरह बैठकर बातें करेंगे। मैं वह, उस बंगले में ठहरा हूँ। उठो—चलें।'

वह लड़की तारकं की बात का जवाब न देकर उसके पीछे हो ली। डाक-बंगला के बड़े हॉल में एक आराम-कुर्सी पर उसे बिठाया और अपने फ्लास्क से जबर्दस्ती आधा कप चाय उसे पिलाया और बाकी खुद पिया तारकं ने। फिर पानदान टेबुल पर उसके समीप रख दिया और खुद 'बायर' (चुरुट) जलाकर धूम्र से कमरा भरता हुआ मेज से सटकर खड़ा हो गया, उसके सामने। मानो कहानी सुनने के लिए वह एकदम तैयार है।

वह भी इसकी गंभीरता देखकर स्वस्थ हो, दिल खोलकर, बिना कुछ छिपाये सब वृत्तान्त कहने ल गी—

'...मेरा नाम सूर्यकान्तं है। मेरी मा वेश्या है। अगर आप इस गाँव के होते तो पद्मावती का नाम जरूर जानते। हमारे कुलवाले हमारे घर से ईर्ष्या रखते हैं। मेरी अम्मा ने जो दौलत कमाई है और जो चातुरी पाई है—वह दूसरों में मिलना मुश्किल है। मेरे पिता इस इलाके के एक नामी जमींदार थे। उनको मरे करीब दस साल हुए।

'मुझे पढ़ाने-लिखाने या संगीत सिखाने में मेरी मा ने कुछ भी कसर नहीं की। मुझे साधने का उसको वही तो एक बहाना मिला है।

वह कहती है कि यह पढ़ाना-लिखाना ही काल हुआ कि मैं उसकी बात नहीं मानती।'

'मैं जब सयानी हुई तो मेरी मा ने मुझे भी उसी पेशे में उतरने को कहा। पर, मैंने नहीं माना। मुझे उस जीवन से घृणा है। मुझे मालूम पड़ता है कि मैं गलती से इस कुल में पैदा हो गई। हमारे घर के लोग भी यही कहते हैं।

'मेरी मा ने मुझे एक लखपति वैश्य-मल्लूक के हाथ में सौंपने का निश्चय किया है। मैं बहुत प्रार्थना करती हूँ, गिड़गिड़ाती हूँ, मगर वह मानती नहीं है। और वह अपनी बात चलाकर ही रहेगी। उसके विरोध में कोई बोल नहीं सकता। और बोलकर कोई रह ही कैसे सकता है? मेरे घर में वह मुसोलिनी है।

'मेरी गली के छोर पर एक शास्त्रीजी हैं। उनका लड़का कामेश और मैं लड़कपन से साथ-साथ खेले-पढ़े हैं। हम बड़े हुए तो हमारे घर के लोगों ने दोनों का बोलना-हँसना रोक दिया। न मालूम क्या हो? यह डर था उन्हें। ब्राह्मण-कुल का गौरव कहीं नष्ट न हो जाय, इस डर से शास्त्रीजी हजार आँखों से बेटे पर निगरानी रखते थे।

'मेरी मा कामेश का नाम सुनकर ही नाक-भौंह सिकोड़ लेती है। वह अच्छा हो, सुन्दर हो, मगर जब लखपति नहीं है तो उसकी बेटी के ऊपर नज़र डालने का उसे क्या हक है!—वह किसी बैंक में क्लर्क है। बेचारों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है।

'हम मिल नहीं सकते थे, मगर मेरी तकलीफें उसे मालूम थीं। भला दुनिया को मालूम हुए बिना कैसे रह सकता है? ऐसी बातें तो

बिजली की तरह फैल जाती हैं। कहावत भी है—वेश्या के घर में कहीं बात छिपी है ?'

'एक रात हम लोग मेला देखने गये। वहाँ कामेशं दिखाई पड़ा। देखते ही मानो मेरा गया प्राण फिर लौट आया। मेरी मा वगैरह 'विट्ठल भजन' में मग्न थी। इसलिए मैं उठकर उसके पास चली गई। मुझे पहचानकर उसने पहले ही इशारा किया।

'चन्द्रभागा के उस पार जाकर हम बैठे। मैंने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। बहुत कहा, मिन्नतें कीं कि मुझे इस जेल से छुड़ाओ—कहीं ले चलो। कामेशं को मालूम था कि मैं उससे प्रेम करती हूँ और शादी करके रहना चाहती हूँ। मुझे वह बहुत चाहता भी है।

'मेरी सारी बातें सुनकर उसने कहा कि मेरी बातें तो तुम जानती ही हो। बड़े लोग सिर पर हैं। उनका विरोध कर कोई भारी काम कर डालने में डर होता है। मगर रक्षा करने का भार मुझ पर है, तुम डरो मत। धीरज रखो। समय देखता रहता हूँ, मौका मिलते ही उचित कार्रवाई करूँगा।—आदि बातें उसने बहुत विश्वास के साथ कहीं।

'मगर दूसरे दिन न मालूम कैसे हमारी बातें मेरी मा को मालूम हो गईं। निर्दय होकर मेरी मा ने मुझे पीटा। कामेशं के पिता ने और भी बड़ा उपाय किया। मालूम पड़ता है उसका आफिसर लोगों से कुछ परिचय था। दो दिन के अन्दर कामेशं की काकिनाड़ा बदली करवा दी। गाँव से जाने के पहले कहीं मुझसे मिल न ले, इसलिए साथ जाकर गाड़ी पर चढ़ा आया।

'अब महीना बीतने पर आया। कामेशं की कोई खबर नहीं मिली है। वह भी नहीं आया। किसी के हाथ चिट्ठी भी नहीं भेजी। निराश होकर बैठ गया या यह सब झंझट उठाने के डर से मेरी बातें भूल गया—समझ में नहीं आता है।

'इधर एक तरफ से प्रलय पास आता-जाता था और मैं बैठी थी कि कामेशं आज आया, कल आयगा। मगर...। आज रात की शुभ घड़ी में मुझे उस साहूकार के गले में बाँधे जाने का निश्चय था। उस नरपशु के सामने मैं कितना रोऊँ-चिल्लाऊँ उसको दया थोड़े ही आती। उतना रुपया व्यर्थ करके मेरी प्रार्थना पर वह लौट जाता? और मेरी मा—भला उस पत्थर में दया-माया...!

'इसलिए चुपचाप आँख बचाकर पिछवाड़े की राह न मालूम मैं कैसे यहाँ आ गई! उस मसजिद के पास घटे भर तक कलेजा फाड़कर रोती रही। फिर वहाँ से उठकर आई कि चलूँ नाले की शरण लूँ। कूदने के लिए खड़ी ही थी कि आप आ गये। मैं क्यों जीवित रहूँ—? आप ही बताइये?

उस लड़की की कहानी सुनते समय तारकं के मन में एक रस के सिवा सब रसों का संचार हुआ। उसके आखिरी प्रश्न से उसका मन विचलित हो गया। आँसू आ गये। मगर वह और न कहीं घबरा जाय इसलिए आँसुओं को छिपाकर वह बोला—

'क्यों जीना चाहिये?...तुम्हें मालूम होगा।...मैं जैसा कहूँ वैसा करोगी?'

'मतलब?'

'मेरी बात पर विश्वास रखना।'

'आप इस बात पर तर्क करके मेरे दिल को दुखाते हैं।'

'अच्छा, तो सवेरे चलें?'

'कहाँ?'

'कहना ही चाहिये?'

'माफ कीजिये। भूल से पूछा। उसका कोई अर्थ न लगाइये।'

'अर्थ निकालने के लिए एक मैं ही मिला हूँ, क्या? बस, अब थोड़ी देर सो तो लो। अरे अभी तक! मैंने कहा और उछलकर उस खाट पर पहुँच जाना चाहिये...'

'और आप?'

'मुझे नींद से बिल्कुल दुश्मनी है। थोड़े दिन में खुद ही तुमको इसकी सच्चाई मालूम हो जायगी। मैं अभी क्यों कहूँ?'

वह थकी हुई थी। तकिये पर सिर रखते ही गहरी नींद में डूब गई—जहाँ सपने भी नहीं झाँक सकते। तारकं ने पाइप एक तरफ फेंक दिया, थोड़ी चाय पी और एक सिगरेट जलाई।

× × ×

सवेरे जब मित्र लोग तारकं से मिलने डाक बँगले पर आये तो 'बवाय' ने उनके हाथ में चिट्ठी दी और कहा कि कलवाले बाबू ने दी है। पत्र पढ़ने से उन्हें कुछ भी साफ-साफ समझ में न आया। 'वाचर' से कुछ प्रश्न किये मगर बे-सूद। आखिर भाग्य को गाली देते हुए बेचारे सब घर लौट गये।

गाड़ी पकड़ने में देर होने के डर से तारकं ने एक टैक्सी की और

सीधे बेजवाड़ा आकर एक्सप्रेस कैच किया। शाम होते ही उस लड़की के साथ मद्रास पहुँचा। जब तक गाड़ी में रही, सूर्यकान्तं बहुत ही उदास एक कोने में बैठी रही। न बोली न चाली। थोड़ी देर सोई जरूर। खाना भी नहीं खाया। मुँह जूठा कर उठ गई।

तारकं ने भी उसकी दशा देखी और उसे चुपचाप छोड़ दिया। 'स्टाल से कुछ पत्रिकायें खरीद लाया और उसे ही सामने रखकर सारा समय किसी तरह बिता दिया।

'बेसिन ब्रिज' * से फोन कर दिया था। तारंक ने इसलिए 'सेंट्रल' स्टेशन पर मोटर तैयार थी। नौकर और ड्राइवर ने नमस्कार किया।

सामान सब दूसरी गाड़ी से ले जाने तथा घर की और ज़रूरी बातें समझकर नौकरों को तारक ने भेज दिया और खुद मोटर में सूर्यकान्तं को बिठाकर बिजली की रोशनी में मद्रास नगर की शोभा दिखाने ले चला। घूमते-घामते 'बीच' (समुद्र किनारे) पहुँचे। वहाँ की ठंडी हवा में धीरे-धीरे मोटर चलाते हुए, हवा खाते हुए वे लोग साढ़े नौ बजे घर पहुँचे।

सूर्यकांतं ने यह पहली ही बार मद्रास देखा है। दिन तो था नहीं, रात की छाया और बिजली की रोशनी में मद्रास की शोभा देखकर वह विभ्रान्त हो गई। वह जब विस्मय में ही थी कि तारक घर पहुँचा उसे लेकर। यद्यपि वह अमीर की लड़की थी, मगर मछलीपट्टम छोड़कर कभी बाहर नहीं आई थी। इसलिए वह तारकं का मकान उसे इन्द्र-भवन की तरह दिखाई दिया। तारकं की बात, रंग-ढंग देखकर

* मद्रास (सेंट्रल) के पहले का स्टेशन।

उसने समझा था कि कोई संभ्रान्त पुरुष हैं, मगर उसके बारे में बात-चीत में विशेष विवरण तो आया नहीं था। अतः उसे कुछ मालूम न था। यह सब देखकर उसे सन्देह हो रहा था कि यह सच है या स्वप्न, उसकी आँखों से यह भाव टपक रहा था। तारकं ने ताड़ लिया—

'क्या सूर्य ? घर पहुँचने पर भी अभी खुमारी नहीं दूर हुई ?—अरे मुत्तु (नौकर) ! सूर्य स्नान करेगी, कुप्पम्मा (नौकरानी) को ज़रा इधर भेज।'—तारकं ने नौकरानी को बुलाकर सब बातें बता दीं और खट-खट करता हुआ अपने कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद भोजन करने के लिए टेबुल के पास आ बैठा तारकं। मानसरोवर में जल-विहार समाप्त कर नायक के पास मन्द गति से जाती हुई राजहंसिनी के समान मालूम पड़ी सूर्य—तारकं की कला-भावना में। स्नान करने के बाद अभी पानी सूखा नहीं था, इसलिए सूर्य के केश-पाश रेशम की तरह बैठ गये थे—बिखरे नहीं थे। कान के ईयर-रिंग और साड़ी बदल डाली थी।

उसको देखते ही तारकं ने उठकर बगल के आसन की ओर निर्देश किया। मगर वह तुरंत बैठ नहीं गई। कुर्सी की बाँह पर अपने को टेककर अर्द्ध-त्रिभंगी आकार में पोज़ देती हुई खड़ी हुई। उसकी आँखें मानो पूछ रही थीं—मैं सुन्दर हूँ या नहीं ? उसके जवाब में तारकं झट अन्दर गया और 'स्केच' बुक लाकर तैयार हो गया। कुर्सी पर पैर रखकर और जाँघ पर स्केच बुक रखकर जल्दी-जल्दी 'लाइटनिंग-स्केच' बना डाला !

सब कुछ नया था। इसलिए वह चुपचाप हिले-डुले बिना वहाँ

खड़ी रही। भोजन परोसने के लिए आया हुआ नायर मालिक को काम में मग्न देखकर चुपचाप पीछे खिसक गया। यह उसका अभ्यास था।

'स्केच' पूरा करके अपने काम को एक बार फिर अच्छी तरह देख-भालकर सूर्य की ओर बिम्ब प्रतिबिम्ब को ठीक मिलाने के लिए देखता हुआ समीक्षा करने लगा। फिर अपने कौशल पर कुछ गर्वित हुआ और स्केच बुक सूर्य की ओर बढ़ा दिया। वह उस चित्र को देखकर भूल गई अपने को—परवश हो गई। क्या यह उसी का रूप है जो इन रेखाओं में बाँधा गया है? यह स्वप्न तो नहीं है! वह बहुत देर तक उस चित्र पर से आँखें न हटा सकी। मुखाकृति बता रही थी कि वह चित्र उसे बहुत पसन्द आया है।

फाइल वगैरह मेज पर फेंककर तारक उसको अनिमेष नेत्रों से देखता हुआ उसके प्रशंसा-शब्दों को सुनने के लिए उत्कण्ठित हो रहा था।

'बहुत...अच्छा है।'

'जब तुम्हारे रूप में से बाँट लिया है, तब उतना भी न हो तो फिर...।'

'मैं इतनी सुन्दर हूँ?'

'कहने से नहीं मानोगी, इसी लिए तो यह साक्षी तैयार कर दी है।'

दोनों को हँसते देखकर नायर ने समझ लिया कि अब कोई हर्ज नहीं है। उसने आकर खाना टेबुल पर सजा दिया। बातचीत विनोद

करते हुए दोनों ने भोजन में काफी देर लगाई। फिर पान लेकर ड्राइंग-रूम में गये। रेडियो में कुछ देर तक कोलम्बो का सिंहाली नाटक सुनते रहे। सूर्य नींद से झुकने लगा। ज्यादा बैठ न सकी। नौकरानी ने कमरे का रास्ता बताया और वह सोने चली गई। तारक अबाध गति से ध्रूम-होम करता हुआ चिन्ता में डूबा हुआ था। विचार सागर में डूबा रहने पर भी हाथ का सिगरेट न बुझने पाये—यह उसकी आदत है। क्रमशः वह नींद में खो गया।

नई जगह होने की वजह से सूर्य को खूब नींद नहीं आई। इसलिए पौ फटते ही बगीचे में आकर मलय-पवन का सहायता से सैर करती हुई थकावट दूर करने लगी। माली हाथ में पानी का घड़ा लिये जा रहा था। इसको देखकर घड़ा वहीं रख दिया और कुछ गुलाब के फूल तोड़ सबों की डंठल एक जगह जमाकर 'बोके' (गुलदस्ता) बनाकर उसे भेंट किया। फिर सारा बगीचा घुमा लाया। कुप्पम्मा (नौकरानी) भी फूलों का गुच्छा लिये वहीं आई। सूर्य ने उसे भी ले लिया और वनकन्या या बाल हिरणी की तरह उत्साह और विनोद के साथ पुष्प-चयन किया। डाली भर फूल लिये वह घर में आई और उन फूलों को अपने सुन्दर सुकुमार छोटे-छोटे हाथों से संगमरमर के पेडेस्टल पर स्थित अवलोकितेश्वर के चरणों में सजाने और भक्ति में डूबने लगी।

स्नान वगैरह करके ड्रेसिंग गाउन पहने तारक वहाँ आकर खड़ा हो गया और परिहास से बोला—अपरिचित देवता की पूजा नहीं करनी चाहिये।

सूर्य ने दूसरे ही साँस में उससे भी बढ़कर जवाब दिया—अपरिचित होने से क्या ? विश्वास पैदा कर देने की शक्ति जब उसमें है तो फिर नहीं किये बिना बनता है ?— तारक नहीं समझता था कि इस सौन्दर्य के साथ-साथ इतनी बुद्धि-कुशाग्रता भी है। उसको अचरज हुआ।

काफ़ी आई। तारक ने खड़े-खड़े पी लिया। 'टायलेट' विधान पूरा करने के बाद फिर अच्छी तरह पेट-पूजा करके शहर के लिये रवाना हुए।

बड़ी-बड़ी दूकानों में गये। जहाँ जहाँ तारक जाता, उसकी बड़ी खातिरदारी होती, सब हाथ जोड़कर खड़े होते, उसकी आँख के इशारे पर दौड़कर चीजें लाते— यह सब देखकर सूर्यकान्तं को बड़ा अचरज होता। फिर उसने जो सामान खरीदे उनका कोई हिसाब नहीं था। उसको मालूम पड़ा जैसे यह कोई करोड़पति हो। जो कुछ खरीदा, सब सूर्य के वास्ते ही। वह फरमाता और यह विरोध न कर सकने के कारण सिर हिला देती। मगर उसके मन में दुःख होता कि क्यों यह इतना रुपया मेरे वास्ते खर्च कर रहे हैं। मगर मना करने से न जाने तारक क्या समझेगा। उसकी प्रतिष्ठा को कहीं धक्का न लग जाय—आदि बातें मन में आने के कारण वह चूँ न करती।

एक दो दिन तक तो सूर्य को नये-नये गहनों और कपड़ों को देखने से ही फ़ुर्सत न मिली। शाम को सैर करने और एक दिन कोई अच्छा पिक्चर आया था तो तारक की जबर्दस्ती से सिनेमा गई।

दिन भर पढ़ने के लिए, सुनने के लिए, देखने के लिए वह भवन

सामग्रियों से भरा पड़ा था। एक मिनट भी ऐसा नहीं हो सकता जब कि मन न लगने की शिकायत हो। कितनी तरह की किताबें—कला-सम्बन्धी, कितनी मूर्त्तियाँ, कितने पेंटिंग (चित्र), वाद्य सामग्री—वायोलिन, सितार, वीणा आदि-आदि।

सुबह से शाम तक आने-जाने वालों का ताँता लगा रहता—मानो वह एक तीर्थ हो। आनेवालों में अधिक लोग तारक के मित्र ही होते, इसलिए वह सबसे सूर्य का परिचय कराता। थोड़े दिन में उसके परिचित मित्र भी सूर्य से अच्छी तरह मिलने और बातचीत करने लगे। कुलमर्यादा या अभिजात लक्षण—किसी में भी सूर्य पीछे न रही। उसने शीघ्र ही उन लोगों के हृदय में गौरव-पूर्ण पद पा लिया।

घर में नौकर लोग उसे मालिक के बराबर, कभी कभी तो मालिक से भी अधिक इज्जत करते। किसी के भी मन को अपने नवनीत-कोमल-व्यवहार द्वारा वश में कर लेने की क्षमता ने उसकी बड़ी सहायता की।

तारक हर घड़ी उसका मुँह जोहता रहता। सूर्य का नयापन भी चला गया। वह मचलती, कूदती, खेलती, हठ करती—मानो सहोदर भाई न होने की लालसा पूरी कर रही हो। निर्मल प्रेम था उसका। हृदय में कोई बात छिपाती नहीं। यह पराया है—यह भाव भी उसके मन में नहीं आता।

तारक ने कितने ही तरह से, कितने ही वेष में सूर्य का चित्र खींचा। दिन-रात उसी दीक्षा में तन्मय हो गया। अगर उन तैयार चित्रों को प्रदर्शित करता तो कला-रसिक लोग अगर धन देकर उन्हें खरीद लेते और उन चित्रों से अपना कमरा सजाने में अपना भाग्य

समझते। मगर इधर तारकं स्टूडियो में हवा तक को नहीं आने देता। इसके पहले 'माडेल' का काम देनेवाली युवतियों को उसका दर्शन दुर्लभ हो गया। उनसे भी वह कभी नहीं मिलता।

मगर तारकं को इन सब चित्रों में कुछ कमी मालूम पड़ रही थी। उसका मन आन्दोलित होता। उसे दबाने के लिए वह अविश्राम भाव से कूची चलाता रहा। मगर चित्रों में वह विशिष्ट मोहन-भाव चित्रित न कर सका। इसका कारण उसका संकोच ही था...।

उस दिन सबेरे सूर्यं नित्य-नियमानुसार स्टूडियो में गई। तारकं प्लेट को खुरचकर साफ कर रहा था। सूर्य के आते ही काम करना छोड़कर सिर उठाकर उसकी ओर इस तरह देखने लगा। और फिर ऐसे धीर स्वर में बोला, मानो कुछ निश्चय करना चाहता है—

'सूर्यं, दरवाजे की चिटकिनी लगा दो।'—मगर सूर्यं की समझ में कुछ न आया। उधर से बिना आज्ञा कोई आ नहीं सकता। नौकरों से बातचीत करने के लिए फोन है। नौकर बिना आज्ञा के किसी को सीधे आने नहीं देता। फिर भी उसने कहा—इसलिए समझ में न आने पर भी उसने दर्वाजा बन्द कर दिया।

'इधर आओ।'

जरा झिझकती हुई पास गई। यद्यपि तारकं के मुँह पर कोई परिवर्तन नहीं है। चेहरा प्रसन्न ही है—फिर भी कुछ न कुछ जरूर होगा। क्योंकि इतनी गंभीरता-पूर्वक वह कभी नहीं बोला था उससे।

'बैठो!'

बैठ गई। सोचने के लिए भी वह समय नहीं देता। नजर से ही

वह उसे कठपुतली की तरह घुमा रहा है। मंत्र मुग्ध की तरह वह चुप-चाप कहे मुताबिक किये जाती है।

पास आकर, सूर्य के समीप, सामने तारक खड़ा हो गया—मैंने तुम्हें बचाया था। यह बात भूली तो नहीं हो?'

'इस जन्म में भूल जाऊँगी? नहीं। आपका ऋण मैं कैसे चुकाऊँ यही...'

'प्रत्युपकार करके।'

'कहिये, आपकी बात मैं टाल सकती हूँ?'

'खूब सोच लो'

'यह क्या? आप इस तरह क्यों बोल रहे हैं?'

'कहूँ?'

'संशय क्यों? आपको क्या चाहिये?'

'तुम्हारा...शरीर—'

'आँ!'

'तुम्हारा रूप...चाहिये।'

क्या अब भी सूर्य की समझ में नहीं आयगा? तो आखिरी तथ्य यही था? कला-जीवन, यह और वह—यह सब बातें सिर्फ ऊपरी गप थीं। उसको चाहिये शरीर? इतने दिनों का लाड़-प्यार-इसीलिए था? धन देकर वश में करने वाले सेठ के हाथ से छूटकर फिर सिंह के पंजे में फँसना! फिर इसमें उसमें फर्क क्या रहा! धनवान है, इसलिए अपने विलास के लिए पैसे से खरीदना!

सूर्य के मन में जो व्याकुलता थी वह मुख पर भी परिलक्षित हो

रही थी। तारक सब समझ रहा था; मगर तुरत वह उसे सहायता देकर समुद्र के तल से निकालना नहीं चाहता था। उसने गिरह खोलने में मदद नहीं की। उसके बारे में निर्णय का अधिकार उसी पर छोड़ देना ठीक है। मगर बातों मे ढकेलकर उसे निश्चय पर पहुँचाने के इरादे से तारक बोला—

'क्या कहती हो तब ?'

'यही आपको ठीक मालूम पड़ता है ?'

'क्यों ?'

'आप अच्छे आदमी हैं, विपत्ति से निकालकर एक किनारे लगायेंगे यही सोचकर उस दिन आपके साथ आई थी—भक्ति श्रद्धा-पूर्वक। अब बीच धार में आप डुबा रहे हैं।'

'मैं वैसा कह रहा हूँ ?'

'कहेंगे क्यों ? रास्ता दिखा रहे हैं। इतने दिनों से मैं समझ रही थी कि आपका हृदय निर्मल है।'

'राईट।'

उसी दिन क्यों न डूब जाने दिया ? उस दिन आपने मुझे बचाया था—इसी तरह ठगने—धोखा देने के लिए !...जान चली जाय मगर...। मैं कौन हूँ, कैसी हूँ - आप जानते हैं न ?'

गुस्से से उसका मुख लाल हो रहा था। झंझा-क्षुभित वन-लतिका की तरह वह काँप रही थी। इसी समय तारक ने उस तूफान को रोकने-वाली मुस्कराहट के साथ कहा—

'तुम गलती कर रही हो !'

'नहीं, स्वप्न देख रही थी—अब जाग गयी हूँ।'

'कितनी कविता है तुम में?...इसी लिए मेरी आकांक्षा और बढ़ती जाती है।'

'आप से बोलने में भी मुझे घृणा हो रही है। अब यहाँ नहीं रहना चाहिये।'

'कहाँ जाओगी?'

'समुद्र की शरण में।'

'नहीं, कैनवास पर, रंगीन चित्रों में।—पगली, कैसी घबरा गई! मैं तुम्हारे शरीर को शरीर के वास्ते चाहता हूँ? नहीं तुमने गलती की। तुम्हारी रमणीयता लेकर, शोभा लेकर चित्रों में उतारना चाहता हूँ और कुछ नहीं।'

'सच।'

'अभी ज़रा ठहरो। मैं क्या वर माँगता हूँ?...तुमको सहज भाव से...वस्त्र-रहित होकर...।'

'क्या?...क्या? और एक खेल तो नहीं है? आपके सामने—लज्जा छोड़, वस्त्र-रहित होकर खड़ा होना?'

'लज्जा? मेरे सामने क्यों? मेरी आँखें तुम्हारा शरीर-सौष्ठव नहीं देखतीं, वह तो रेखा-रचना में मग्न रहती हैं। देवियों की अर्ध-नग्न मूर्तियाँ बनानेवाले शिल्पी के मन में जो पवित्र भाव रहता है वही मेरी काम्य वस्तु है। उम्र के कारण जो संकोच और लज्जा आ गई है उसे बच्चे की तरह त्याग दो—छोटी लड़की बन जाओ...।'

'अच्छा।'

'मन में इच्छा न हो तो अच्छा मत कहो।'

'आपके मन को तकलीफ पहुँचाना···'

'सूर्य, तुम जिद कर रही हो इसलिए नहीं,·····बल्कि इससे कला-सृष्टि में एक कमी रह जाती है·····इसलिए मेरा मन कष्ट पा रहा है, नहीं तो··'

'कितनी बुद्धिमानी के साथ आप बातचीत करते हैं!'

मन शान्त हो जाने पर सूर्य ने मुस्कराते-मुस्कराते साड़ी और चोली धीरे-धीरे खोल दी और बिना किसी सकोच और गड़बड़ी के वह दिव्य अप्सरा की तरह शोभा के साथ खड़ी रही।

तारकं अंग-भंगी का, खड़ा होने के ढग का ढंग बताकर पहले से ही तैयार रखे हुए 'ईजेल' (स्टैंड) को उचित स्थान पर रखकर रचना में निमग्न हो गया।

दिन बीतने लगे। चित्र क्रमशः मूर्तिमान् हो चैतन्य होने की भ्रान्ति उत्पन्न करने लगा।

सूर्य, स्टूडियो में जब काम नहीं रहता तो संगीत का अभ्यास करती। पिआनो बजाने में तो वह बड़ी प्रवीण हो चली। तारकं की सगति से कला के मर्म को भी समझने लगी। अनाविद्ध रत्न की तरह उसकी चमक दुगुनी हो चली।

'ज्योत्स्ना रानी' चित्र तैयार हो गया। ज्योत्स्ना रानी के पादतलों में अर्द्ध-चक्राकार घने नीले मेघ; उसके किनारे पीलापन लिये हुए गुलाबी रेखायें, बाकी सब नव-पल्लव के समान हरी रेखाओं से आकाश और चाँदनी की छाया। उस बीच में ज्योत्स्ना में मिली हुई एक दिव्य

मूर्त्ति, उसके कपोलों तथा केशों में कई तरह के रंगवाले चमकते हुए आभूषणों की तरह सितारे।

आखिरी 'टच' भी दे देने के बाद तारकं ने मित्रों को पार्टी दी। उसी अवसर पर चित्र का प्रदर्शन भी किया। देखनेवालों को उचित प्रशंसा के शब्द नहीं मिलते और अनिमेष-दृष्टि से खड़े होकर वे देखते रह जाते।

साधारण जनता को आँखों का फल मिले यह जरूरी था। मित्रों ने भी जोर दिया। अतः तारकं ने 'ज्योत्स्ना रानी' का प्रदर्शन करना मंजूर कर लिया। सौन्दर्य-महल में जब से प्रदर्शन शुरू हुआ, भीड़ के कारण देह छिलती थी।

हफ्ता, और एक हफ्ता। कई हफ्ते तक वहाँ रखने पर भी लोग तृप्त होते नहीं दीखते। और जब तक सब लोग न चाहें तारकं प्रदर्शन बन्द करने की कठोरता नहीं कर सकता।

सूर्य का नाम तारकं के नाम को प्रतिष्ठा से भी आगे बढ़ गया। सुप्रसिद्ध सिनेमा-अभिनेत्रियों से बढ़कर लोग उसके पीछे पड़ने लगे। वह कहीं निकले, कहीं जाय आवे और लोगों को मालूम हो जाय तो लोग टूट पड़ते। इसलिए पहले की तरह जब चाहें तब घूम आना, सैर चला जाना—वगैरह मुश्किल हो गया।

सिनेमा में ले जाने के लिए कितने ही लोग छटपटा रहे हैं। मगर तारकं ने कुछ उस तरह उन्मुखता नहीं दिखायी है—इसलिये उसने हाँ या नहीं—नहीं कहा है।

उसको आये छः महीने बीत गये। यह सातवाँ जा रहा है—मगर आज तक उसे कभी घर की याद नहीं आई या उसके लिए

दुःख नहीं हुआ। शुरू में तो तारक भी जरा शंकित रहता—शायद उसके अपने लोग पुलिस की सहायता से आकर हल्ला-गुल्ला मचावें। मगर उन लोगों का कहीं नामोनिशान नहीं था। शायद वे लोग यह सोचकर दुःखी हो रहे होंगे कि कहीं डूब-धँस मरी। उसके पहले भी तो सूर्य ने उन लोगों से कई बार धमकी के रूप में बातें कही थीं। वे उसे भूले न होंगे। उनको..।

कामेश के प्रति सूर्य के क्या भाव हैं, इसकी थाह भी ली थी तारक ने। वह उस गहराई में विद्यमान था। उस दिन से कभी उसकी चर्चा नहीं चलाई। उस साधारण आदमी के गले में यह पड़ेगी तो कैसा होगा? सो भी कला जीवन में उसकी सहायता से वंचित हो जाना तारक को जरा भी अच्छा न लगता था। मगर फिर भी वह चाहता था कि सूर्य पहले की तरह बातें भूलकर वैसा ही करे।

× ×

मध्याह्न का समय। गर्मी का दिन। खस की टट्टियों में तारक और सूर्य बैठे मन बहला रहे थे। धीरे-धीरे वह गाढ़ निद्रा में निमग्न हो गया। वह कुछ सोचती रही। आँखें बन्द न कीं।

मुत्तु (नौकर) ने आकर कहा कि कोई आया है। तारक के लिये ही आया होगा। मगर अभी कौन भारी काम होगा कि कच्ची नींद में जगाया जाय। आखिर कोई परिचित मित्र ही तो होगा। तब तक वह बात करती रहेगी। तारक भी थोड़ी देर में जाग ही जायगा। 'अच्छा, बैठने को कहो'—मुत्तु से खबर भेज कर बस आइने के पास गई। मुँह पर लटकनेवाले लटों को ठीक किया। कुंकुम की बिन्दी भी टेढ़ी

हो गई थी उसे ठीक किया। पान की लाली जो ओठों से बाहर निकल रही थी—पोंछा। फिर हॉल में आकर देखने लगी कि कौन है। अचरज़ के साथ उसने पहचाना--कामेश।

देखते ही उसका आनन्द सीमा पार करने लगा। जैसे महाकृपण को नव-निधि मिल गई हो। कामेश उसका है उसके लिये खोजकर यहाँ तक पहुँचा है।

हाथ जोड़कर उसके समीप जाने लगी मानों उसके बाहुपाश में बँध जाना चाहती हो। मगर कामेश के मुँह में कोई आनन्द प्रतिफलित नहीं हो रहा था—बल्कि ऐसा मालूम पड़ा मानो मनों बाधायें, यातनायें घर बना कर उसके चेहरे में विद्यमान हों।

'ठहरो,—मुझे छूओ मत।'

शिला-मूर्त्ति की तरह वह वहीं खड़ी रह गई। इतना गुस्सा क्यों?

'तुम्हारी चाल देखकर ही बहुत खुश हो गया। मुझे अच्छी अक्ल सिखाई तुमने! मगर तुमसे कहना बेकार है। आखिर तुम्हारी जाति का स्वभाव कहाँ जायगा?'

'कामेश...?'

'तुम्हारे मुँह से निकला मेरा नाम भी नरक में जायगा। इतनी अक्ल और दूर दृष्टि है—मैं नहीं समझता था। तो वह सब सिर्फ दिखावा ही था? ओह तुम्हारी मा तुम्हें तकलीफ दे रही थी! निकृष्ट जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर रही थी। तुमको अच्छा नहीं लगता! मेरी सहायता चाहिये। मेरे सिवा और दूसरा कोई नहीं था—ये सब बातें इसी जीभ से निकली थीं या दूसरी जीभ थी?'

'कामेशं, ऐसी बातें न बोलो। मैंने भुगता है वह मेरे पूर्व जन्मों का पाप रहा होगा। और मुझे मत दुखाओ। मैं अभी तक तुम्हारी ही हूँ'

'छिः अब भी तुम कैसे बोल रही हो? क्या तुम समझती हो कि दुनिया अन्धी है? तुम जो कर रही हो सो लोगों को मालूम नहीं है? 'ज्योस्ना रानी'—ओह!'

'क्या, तुमने वह चित्र देखा है?'

'देखा, बड़ी खुशी हुई। इसी लिए तो मालूम हुआ कि देवीजी यहाँ राज-भोग भोग रही हैं। और इसी लिए नजराना भेंट करने आया हूँ। लो—यह, आफिसरों को धोखा देकर, माता-पिता को भुलावा देकर उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिलाकर आफिस से चुराकर यह थैली तुम्हारी पाद-पूजा के वास्ते लाया हूँ। इससे भी तृप्ति होगी? महाकाली हो! रक्तधारा से अभिषेक किये बिना मन भरेगा? मगर क्या करूँ! तुमने तो हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। अब उसमें रक्त की एक बूँद भी नहीं है। फिर भी देखूँ कहीं एकाध बूँद बाकी रह गई हो तो उसी से संतोष करना...'

सूर्य घबराहट के कारण पगली-सी हो गई। कामेशं को बाहु-पाश में लेकर 'कामेशं' 'कामेशं'—सुनो 'मेरी बात सुनो'—चिल्लाने लगी। कामेश—सूर्य के स्पर्श से और भी आग हो गया। उसने गँवार की तरह उसे ढकेलकर कहा—

'तुमको कमी क्या है? जिसको शरीर दिया है उसी को यह आलिंगन भी दो।...न मालूम कितना देकर बेचारे ने खरीदा है।... मैं गरीब उतना नहीं दे सकता...।'

बातें तीरों से भी नुकीली थीं। सूर्य सिंह के पञ्जे की चोट खाई हुई हिरनी की तरह लड़खड़ाती हुई बोली—

'कामेश, मैंने कोई पाप नहीं किया है।...मेरा विश्वास नहीं कर सकते?...'

'तुम्हारा विश्वास करूँ तो अपनी आँखों पर अविश्वास करना होगा।'

'अन्यथा न समझो। चित्र-रचना के लिए मैं नंगी जरूर खड़ी हुई थी। मगर उन्होंने कभी भी पाप-दृष्टि से नहीं देखा। भला वे मामूली आदमी हैं? देवता हैं।'

'कौन देवता?' कहता और आँखें मलता हुआ तारक वहाँ आ पहुँचा। उन दोनों की हालत देखकर प्रश्न-सूचक नजर उसने सूर्य पर डाली—मानो पूछ रहा हो कि वह कौन है?

'यह...कामेश'—कोई दूसरा उपाय न देखकर किसी तरह गला साफ कर वह बोली।

तारक के मुँह पर आश्चर्य की रेखाएँ छा गईं।

'तुम्हीं हो, महानुभाव? बाप रे! तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते जान चली गई। क्या, सूर्य ठीक कह रहा हूँ न? तुम तो कहती थी कि मुझे तुम्हारे मन की हालत मालूम नहीं है।...तुम लोगों की सारी बातें मैंने सुनी हैं। कामेश, सचमुच तुम्हारे साथ जैसा भी बुरा बर्त्ताव किया जाय—थोड़ा है। भला, बचपन से साथ-साथ पढ़ी खेली, उसी का मन तुम न पहचान सके अब तक, तो आगे उसे सुख दोगे, इस पर कैसे विश्वास किया जाय? हर एक बात में सन्देह करना, बुरी-बुरी कल्पनायें

और विचार पहले मन में ले आना—आदि तुम्हारी बेवकूफी गई नहीं है ? क्या समझते हो तुम सूर्य को कि जैसे मन में आ रहा है—धमका रहे हो, डरा रहे हो ?'...

'मान लो वह भ्रष्ट ही हो गई।...तो खोजते हुए क्यों आये हो ? इसलिए कि तुम्हारे सामने तुम्हारे महात्याग की प्रशंसा करे वह ? समय आने पर तुम दबाकर निकल गये—संयोगवश मैं नहीं दीख पड़ता तो इसकी क्या हालत होती जानते हो ? तुमने इसके लिए आखिर किया क्या है जरा बताओ। विश्वास दिलाकर ठीक समय पर खिसक गये और अभी आये हो लाज-शरम छोड़कर बोलने !

'मगर, तुम्हारा भाग्य है कि इतना सब करने पर भी उसके मन को इतना दुखाने पर भी—वह अभी तक तुम्हारा ही नाम पर जप रही है। जरा देखो, उसकी आँखों से प्रेम किस तरह बरस रहा है ?...

'मामूली दुनिया में जिसको मूर्खतावश अनीति या अनैतिकता कहते हैं, कला की दुनिया में उसके लिए जगह नहीं है।—मगर यह बात सीखने और जानने के लिए सूर्य के पास रह शुश्रूषा करने की जरूरत है—तुम्हें।...क्या, सूर्य, ठीक है न ?—देखना विद्यार्थी को बहुत दण्ड नहीं देना छोटी-छोटी गलतियों के लिए।...

'तुम लोगों के सांसारिक भाव और व्यवहार कहीं मेरी तपस्या भी भंग न कर दें, मैं जाता हूँ। चाय की बात भूलकर हमें सताइयेगा नहीं। अकेले पीने की अब आदत छूट गई है। है न—सूर्य ?'

तारक किवाड़ की आड़ में होता गया और ज्योत्स्ना रानी की ज्योत्स्ना में कामेश डूबने-उतराने लगा।